विवेक शिक्षा

वर्ष–१०　　जून–१९९९　　अंक ६

विवेक शिक्षा के आजीवन सदस्य

७०. श्रीमती उषा श्रीकांत रेगे—दादर, बम्बई
७१. कुमारी इन्दु जोशी उत्तरकाशी (उ० प्र०)
७२. श्री के० अनूप —रोइंग (अरुणाचल प्रदेश)
७३. गंगा सिंह महाविद्यालय छपरा (बिहार)
७४. डॉ० उषा वर्मा छपरा (बिहार)
७५. श्री विजय कु०प्रभाकर राव संभाजीनगर—(महाराष्ट्र)
७६. श्री विजय कुमार सिंह, अमरीतियैया (बिहार)
७७. श्री रघुनन्दन मेठी, कोटा, (राजस्थान)
७८. श्री भृगुनाथ प्रधान, जमशेदपुर (बिहार)
७९. डॉ० अमरेन्द्र कुमार सिंह, छपरा (बिहार)
८०. श्री रविशंकर पारीक अलित, जयपुर (राजस्थान)
८१. श्री सनत कुमार दुबे सिवनी मालवा (म०प्र०)
८२. डॉ. आशीष कु. बनर्जी-रामकृष्ण मिशन, वाराणसी
८३. श्री चन्द्र मोहन—इंदौर (उ. प्र.)
८४. श्री बी. एस गुप्ता—मानवार (म. प्र.)
८५. डॉ. टी. जे हेमनानी - नागपुर (महाराष्ट्र)
८६. डॉ. एस. एम. सिंह—इलाहाबाद
८७. श्री श्याम सुन्दर चमरिया—बम्बई
८८. श्री जयप्रकाश गुप्ता – परौना, सारण (बिहार)
८९. श्री अमरेश कलवा जयपुर, (राजस्थान)
९०. श्री प्रफुल्ल तुमारे – पुणे (महाराष्ट्र)
९१. श्रीमती कमला घोष—इलाहाबाद
९२. श्री एस. डी. शर्मा - अहमदाबाद
९३. श्रीमती प्रभा भार्गव—बीकानेर (राजस्थान)
९४. श्री मणिकांत मिश्र—नारायणपुर (मध्य प्रदेश)
९५. श्री के० सी० मरांक—बम्बई
९६. श्री ए० के० चटर्जी, आइ. ए. एस.—पटना
९७. सचिव, बियोमोफिकल सोसा—छपरा (बिहार)
९८. श्री सुभाष वासुदेव—तेजपुर (आसाम)
९९. श्री दिलीप देसाई, बरोदा (गुजरात)
१००. श्रीरामकृष्ण आश्रम—इन्दौर (म० प्र०)
१०१. सारदापीठ विद्यालय इन्दौर (म० प्र०)
१०२. डॉ० ओमप्रकाश वर्मा - रायपुर (म० प्र०)
१०३. विवेकानन्द विद्यापीठ—भोपाल (म० प्र०)
१०४. रामकृष्ण मठ —आरामारा (बिहार)
१०५. श्री सुनील खण्डेलवाल—रायपुर (मध्य प्रदेश)
१०६ श्री वसन्त लाल गुप्ता— नागपुर (महाराष्ट्र)
१०७. श्री जयेश प्रभुभट्ट - पुणे (महाराष्ट्र)
१०८. श्री नरेन्द्र कुमार टाक – अजमेर (राजस्थान)
१०९. श्री महन्त युक्तिरामजी—जोधपुर (राजस्थान)
११०. श्री राम मनेन्द्र प्रसाद – जमशेदपुर (बिहार)
१११. कुमारी उषा हेगड़े – पुणे (महाराष्ट्र)

इस अंक में

		पृष्ट
१. श्रीरामकृष्ण ने कहा है		१
२. श्रीरामकृष्ण के प्रिय भजन (१	स्वामी निखिलात्मानन्द	२
३. रामचरित मानस में गुरु-शिष्य परम्परा	स्वामी शशांकानन्द	३
४ श्रीरामकृष्ण की अंत्यलीला (३)	स्वामी प्रभानन्द	८
५ श्रेष्ठ भक्त माँ सारदा	स्वामी ब्रह्मेशानन्द	११
६. श्रीरामकृष्ण के मारवाड़ी भक्त	श्रीदेवव्रत वसुराय	१५
७ स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि में हमारी राष्ट्रीय एकता	स्वामी श्रीकृष्णानन्द	२२
८ भंगी—मोची तुम्हारे भाई		२६
९ स्वामी अद्भुतानन्द की जीवन कथा	चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय	२८
१० विवेक चूड़ामणि	स्वामी वेदान्तानन्द	३१

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—१०　　१९९१—जून　　अंक—६

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप बिचा। निजानन्द में रमता अविचल विवेक शिखा॥

संपादक
डॉ० केदारनाथ राम

संपादकीय कार्यालय :
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर,
छपरा—८४१३०१
(बिहार)

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	३०० रु०
वार्षिक	२५ रु०
रजिस्टर्ड डाक से	४० रु०
एक प्रति	३ रु०

रचनाएं एवं सहयोग - राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

सब काम करना चाहिए परन्तु मन ईश्वर में रखना चाहिए। माता-पिता, स्त्री-पुत्र आदि सब के साथ रहते हुए सब की सेवा करनी चाहिए परन्तु मन में इस ज्ञान को दृढ़ रखना चाहिए कि ये हमारे कोई नहीं हैं।

(२)

बिना भगवद्-भक्ति पाये यदि संसार में रहोगे तो दिनोंदिन उलझनों में फँसते जाओगे और यहाँ तक फँस जाओगे कि फिर पिण्ड छुड़ाना कठिन होगा। रोग, शोक, तापादि से अधीर हो जाओगे। विषय-चिन्तन जितना ही करोगे, आसक्ति भी उतनी ही अधिक बढ़ेगी।

(३)

संसार जल है और मन मानो दूध। यदि पानी में डाल दोगे तो दूध पानी में मिल जायगा, पर उसी दूध का निर्जन में मक्खन बनाकर यदि पानी में छोड़ोगे तो मक्खन पानी में उतराता रहेगा। इस प्रकार निर्जन में साधना द्वारा ज्ञान-भक्ति प्राप्त करके यदि संसार में रहोगे भी तो संसार से निर्लिप्त रहोगे।

(४)

कछुआ रहता तो पानी में है, पर उसका मन रहता है किनारे पर जहाँ उसके अण्डे रखे हैं। संसार का काम करो, पर मन रखो ईश्वर में।

श्रीरामकृष्ण के प्रिय भजन—(१)

स्वामी निखिलात्मानन्द
अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ, इलाहाबाद

[श्रीरामकृष्ण देव अपने गंधर्व कंठसे जब अपने प्रिय भजन गाने लगते थे तो सारा वातावरण की दैवी प्रकाश से भर उठता था। उनके द्वारा गाये गये कुछ प्रिय बंगला भजनों का हिन्दी में राग-बद्ध अनुवाद स्वामी निखिलात्मानन्दजी महाराज ने किया है। यहां एक भजन का मूल सहित अनुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है।—स०]

मूल, राग सिंधु खमाज-झपताल)

मजलो आमार मन-भ्रमरा श्यामापद-नील कमले।
(श्यामापद नील कमले कालीपद-नीलकमले॥)
जतो विषय-मधु तुच्छ हलो कामादि कुसुम सकले॥

चरण कालो, भ्रमर कालो, कालोय कालो मिशे गेलो,
पंचतत्त्व प्रधान मंत्र रंग देखे भंग दिले॥

कमलाकान्तेर मने, आशा पूर्ण एतो दिने;
(तार) सुख-दुख समान हौलो, आनन्द सागर उथले॥

भावानुवाद, (राग सिंधु खमाज—तीनताल)

मगन हुआ मन-भँवरा मेरा श्यामा के पद नील कमल में।
(श्यामा के पद नील कमल में, काली के पद नील कमल में।
विषय-मधु सब तुच्छ हो गये, भरे सकल कामादि फूलों में॥
पद काला भँवरा भी काला, काला काले से मिल एक हो गया।
पंच तत्त्व सब हुए मत्त, रंग देख भगे दिक् दिगन्त में॥
कमलाकान्त कहे मेरे मन की, आशा पूर्ण हुई इतने दिन की।
सुख-दुःख सब एक हो गये, डूबे मन आनन्द उदधि में॥

रामचरितमानस में गुरु-शिष्य परम्परा

स्वामी शशांकानन्द
प्राचार्य, समाज सेवक शिक्षण मन्दिर
बेलुड़मठ

गुरु-शिष्य का सम्बन्ध परम्परागत होता है। जिस प्रकार पिता-पुत्र की वंश परम्परा होती है उसी प्रकार गुरु शिष्य की आध्यात्मिक शक्ति-प्रवाह की परम्परा होती है। इस परम्परा की आवश्यकता के सम्बन्ध में युगाचार्य स्वामी विवेकानन्दजी ने कहा है, "गुरु-परम्परा अर्थात् जो शक्ति गुरु से शिष्य में आती है तथा उनसे उनके शिष्यों में संक्रमित होती है उसके बिना कुछ भी नहीं हो सकता। (वि० सा० III-१८०) गुरु परम्परागत ज्ञान का भी एक विशेष प्रयोजन है और यह भी एक चिरन्तन सत्य है कि ज्ञान में सर्वान्तर्यामित्व है। (वि० सा० X-१५६-६०)"

श्वेताश्वतरोपनिषद् की व्याख्या करते हुए आदि गुरु भगवान् शंकराचार्य कहते हैं, "श्वेताश्वतरो नाम ऋषिः विद्वान यथोक्तं ब्रह्म परम्पराप्राप्तं गुरुमुखात् श्रुत्या मनन निदिध्यासन आदर नैरन्तर्य सत्कारादिभिः ब्रह्माहमस्मि इति अपरोक्षीकृत अखण्ड साक्षात्कारवान्।" अर्थात् श्वेताश्वतर नामक ऋषि ने जाना (ब्रह्म को) अर्थात् यथायत् रूप से वर्णन किये हुए परम्परागत ब्रह्म तत्त्व को गुरुदेव के मुख से श्रवण कर मनन, निदिध्यासन, आदर श्रद्धा, निरन्तर अभ्यास एवं सत्कारादि के द्वारा 'मैं ब्रह्म, हूँ' इस प्रकार अपरोक्ष किया अर्थात् अखण्ड वृत्ति से उसका साक्षात्कार किया।

रामचरितमानस में भी गुरु-शिष्य परम्परा के द्वारा ही रामचरित का महिमा का ज्ञान प्राप्त होता है। तुलसीदास जी कहते हैं : संभु कीन्ह यह चरित सुहावा। बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा॥ सोइ सिव काग भुसुंडिहि दीन्हा। रामभगत अधिकारी चीन्हा। तेहि सन जागबलिक पुनि पावा। तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा॥

सबसे पहले इस सुहावने चरित्र को भगवान् शंकर ने रचा, फिर कृपा करके पार्वतीजी को सुनाया वही चरित भगवान् शकर ने काकभुशुण्डि जी को रामभगत और अधिकारी पहचान कर दिया और काकभुशुण्डि जी से फिर याज्ञवल्क्यजी ने पाया और याज्ञवल्क्यजी ने पुनः इसे भरद्वाजजी के प्रति गाकर सुनाया।

"औरउ जे हरिभगत सुजाना। कहहिं सुनहिं समुझहि बिधि नाना॥" और भी जो सुजान व्यक्ति अर्थात् भगवान की लीलाओं के रहस्य को जानने वाले हरि भक्त हैं, वे इस चरित्र को नाना प्रकार से कहते, सुनते और समझते हैं।

मैं पुनि निज गुर सन सुनी कथा सो सूकरखेत।
समुझी नहिं तसि बालपन तब अति रहेउँ अचेत॥

वही कथा तुलसीदासजी ने वाराह-क्षेत्र में अपने गुरुजी से सुनी। यद्यपि उस समय अपने लड़कपन के कारण वे अधिक न भी समझे हों किन्तु गुरुजी ने जब बार-बार कथा कही तो उनकी समझ में आ ही गयी। गोस्वामी जी कहते हैं "भाषाबद्ध करबि मैं सोई। मोरें मन प्रबोध जेहि होई॥ अब वही गाथा मेरे द्वारा भाषा में रची जाएगी, जिससे मेरे मन को संतोष होगा।

अर्थात् मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम की लीला का रहस्य भगवान् शंकर से आरम्भ कर

रामचरितमानस के पाठकों तक गुरु-शिष्य परम्परा से ही प्राप्त होता आ रहा है।

रामचरितमानस में गु. शिष्य परम्परा के चार दृश्य देखने को मिलते हैं। (१) शिवजी और पार्वती जी का संवाद (२) याज्ञवल्क्य-भरद्वाज संवाद (३) काकभुशुण्डि-गरुड़ संवाद और (४) तुलसीदास जी और संतजनों का संवाद। आइए इन चारों दृश्यों का अवलोकन करें तो बात और भी स्पष्ट हो जाएगी।

उमा-संभु संवाद

भगवती उमा शिष्या के रूप में देवाधिदेव महादेव के चरणों में उपस्थित होती हैं। शिष्या दासी है और गुरु,स्वामी। पार्वती जी कहती है,

"जौं मो पर प्रसन्न सुखरासी।
जानिअ सत्य मोहि निज दासी॥"

हे सुख-राशि, यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं और सचमुच मुझ अपनी दासी जानते हैं तो प्रभु मेरे अज्ञान का हरण कीजिए।

बंदउँ पद धरि धरनि सिरु बिनय करउँ कर जोरि।
बरनहु रघुबर बिसद जसु श्रुति सिद्धान्त निचोरि॥

मैं पृथ्वी पर सिर टेक कर आपके श्री चरणों की वन्दना करती हूँ और हाथ जोड़ कर विनती करती हूँ। आप वेदों के सिद्धान्त को निचोड़ कर अर्थात् वेदों की दृष्टि से भगवान् श्री रघुनाथ जी के निर्मल यश अर्थात् दिव्य लीला का वर्णन कीजिए।

तदुपरान्त भगवती उमा ने भगवान् शंकर के समक्ष अपने प्रश्न रखे जो बड़े ही सहज सुन्दर और छलरहित थे।

"प्रस्न उमा के सहज सुहाई।
छलबिहीन सुनि सिव मन भाई॥'

भगवती उमा के सुन्दर छल रहित प्रश्न शिवजी के मन को बहुत ही भाए और शिष्या के प्रति उनकी कृपा उमड़ पड़ी। मानो गुरु भगवान शंकर अपनी शिष्या को वह परम आध्यात्मिक धन देने के लिए धनभण्डार की ओर बढ़े। उन्होंने अपने प्रभु श्री रामका चिन्तन किया।

"हर हियँ रामचरित सब आए।
प्रेम पुलक लोचन जल छाए॥
श्री रघुनाथ रूप उर आवा।
परमानंद अमित सुख पावा॥"

एक-एक करके भगवान राम के दिव्य चरित भगवान् शंकर के हृदय में उठने लगे। प्रभु की लीला का स्मरण कर उनका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रों में प्रेमाश्रु भर आये। दिव्य लीलाओं के साथ-साथ प्रभु श्री रघुनाथ अर्थात् दशरथ-नन्दन भगवान् राम का रूप हृदय में प्रकाशित हो उठा जिससे सदा परमानंद में रहने वाले भगवान् शंकर ने भी अपार सुख पाया।

मगन ध्यानरस दंड जुग पुनि मन बाहेर कीन्ह।
रघुपति चरित महेस तब हरषित बरनै लीन्ह॥

भगवान शंकर दो घड़ी तक ध्यान के रस में डूबे रहे; फिर उन्होंने मन को बाहर खींचा और तब वे प्रसन्न होकर श्री रघुनाथजी के चरित्र का वर्णन करने लगे।

मैंने अपने गुरुदेव स्वामी माधवानन्दजी को इसी प्रकार शिष्यों को दीक्षा देने से पहले भगवान् का ध्यान करते हुए देखा है। वे शायद तब तक ध्यान करते थे जब तक उनके हृदय में प्रभु का दिव्य स्वरूप उदित होकर उन्हें परमानन्द परम-सुख का अनुभव न प्रदान करता हो। ऐसा होने पर ही वे शिष्यों को बुलाते और गुरु मंत्र देते थे।

भगवान् शंकर ने तब माँ पार्वती को श्रीराम की दिव्य लीला सुनायी। भगवान शंकर नें ही इस गाथा की रचना की है और उसे एक ओर माता पार्वती को सुनायी थी तो दूसरी ओर काकभुषुण्डि जी को। वही कथा काकभुषुण्डिजी ने गरुड़जी को सुनायी थी।

"उमा कहिउँ सब कथा सुहाई।
जो भुसुंडि खगपतिहि सुनाई॥

हे उमा! मैंने वह सब सुन्दर कथा कही जो काक भुपुण्डिजी ने गरुड़जी को सुनायी थी।

काकभुषुण्डि-गरुड़ संवाद

रामचरितमानस में गुरु-शिष्य परम्परा का दूसरा दृश्य काकभुपुण्डि-गरुड़ संवाद है। जिस कथा की रचना भगवान् शंकर ने की थी और अब पार्वतीजी को सुनायी वही कथा भगवान शंकर ने काकभुपुण्डिजी को दी थी। "सोइ सिव काग-भुसंडिहि दीन्हा" वही कथा काकभुपुण्डि जी सुमेरु पर्वत की उत्तर दिशा में सुन्दर नील पर्वत पर पवित्र मन से, हरि भजन करते हुए, जप-ध्यान में सदा डूबे हुए भी निर्मल बुद्धि वाले हंसों को सुनाया करते हैं। अर्थात् गुरु-शिष्य परम्परा स्थिर रखे हुए हैं। उन्होंने भगवान् शंकर से जसी सुनी वैसी ही कथा वे हंसों को सुनाया करते हैं। काक-भुपुण्डिजी ने स्वयं भी कहा है।

"रामचरित सर गुप्त सुहावा।
संभु प्रसाद तात मैं पावा॥

यही गुरु-शिष्य परम्परा चलती रहती है। अब क्या शिष्य जब गुरु बनते हैं तो ज्ञान थोड़ा घटिया हो जाता होगा, ऐसा संशय होता है। किन्तु भग-वान् शंकर ने रामचरितमानस में इस संशय का खंडन किया है।

एक बार सतीजी के दक्ष-यज्ञ में जल मरने के पश्चात् सतीजी के वियोग से दुखी होकर भगवान् शंकर वन, पर्वत, नदी और तालाबों में घूमते फिरते थे और नित नव कौतुक देखते थे। तो नील पर्वत पर उन्होंने यह एक कौतुक देखा।

'बर तर कह हरि कथा प्रसंगा।
आवहिं सुनहिं अनेक बिहंगा॥
रामचरित बिचित्र बिधि नाना।
प्रेम सहित कर सादर गाना॥
सुनहिं सकल मति बिमल मराला।
बसहिं निरंतर जे तेहिं काला॥'

'बरगद के वृक्ष के तले वह (काकभुपुण्डिजी) श्रीहरि की गाथा कहता है जिसे सुनने वहाँ अनेक पक्षी आते हैं। वह श्रीरामचरित को अनेकों प्रकार से प्रेम सहित आदर पूर्वक गान करता है। उस तालाब पर बसने वाले सब निर्मल बुद्धि वाले हंस, उसे सुनते हैं।'

ऐसा देखकर भगवान् शंकर के मन में विशेष आनन्द उत्पन्न हुआ। जगदम्बा भवानी से भगवान् शिव कहते हैं—

तब कछु काल मराल तनु धरि तहँ कीन्ह निवास।
सादर सुनि रघुपति गुन पुनि आयउ कैलास॥

अत. भगवान् शंकर ने स्वयं एक हंस का शरीर धारण कर कुछ समय वहाँ निवास किया और आदरसहित भगवान राम के गुण सुनकर फिर कैलाश लौटे। अपने शिष्य काकभुपुण्डि से पुनः स्वयं रामगाथा सुनकर उन्हें विशेष हर्ष हुआ अतः उन्होंने शिष्य में गुरु तत्त्व समान रूप से ही पाया।

उन्हीं काकभुषुण्डिजी के पास संदेहयुक्त विचलित गरुड़ जी महाराज शिष्य रूप में पहुँचे थे। उन्होंने बार-बार विनती करते हुए काकभुपुण्डि जी की शरण ली थी। 'बार-बार बिनवउँ प्रभु तोही" हे प्रभो! मैं बार-बार आपकी विनती करता हूँ। किसलिए? तो गरुड़जी कहते हैं "सादर तात सुनावहु मोही" अर्थात् हे तात आप मुझे आदर सहित सुनाइए। क्या सुनना चाहते हैं गरुड़जी?

"अब श्रीराम कथा अति पावनि।
सदा सुखद दुख पुंज नसावनि॥"

अब हे तात! आप मुझे श्रीरामजी की अत्यन्त पवित्र करने वाली, सदा सुख देने वाली, दुःख समूह का नाश करने वाली राम कथा आदर सहित सुनाइए।

यहाँ भी परम्परा यही कहती है कि गुरुदेव काक भुषुण्डि जी गरुड़जी के विनम्र सरल सुन्दर और प्रेम युक्त सुखप्रद और अत्यन्त प्रेमपूर्ण वाणी सुनकर कृपा से भर गये।

"सुनत ग ड़ कै गिरा विनीता।
सरल सुप्रेम सुखद सुपुनीता॥

अब काकभुषुण्डि के मन में परम उत्साह हुआ तो वे "लाग कहै रघुपति गुन गाहा॥" श्री रघुनाथजी के गुणों की कथा कहने लगे। इस प्रकार गरुड़जी को काकभुषुण्डि जी ने प्रभु की दिव्य लीला का ज्ञान कराया और उनके संशय दूर कर परं शान्ति का लाभ कराया।

याज्ञवल्क्य-भरद्वाज संवाद

गुरु-शिष्य परम्परा का यह तृतीय दृश्य राम-चरित मानस में मिलता है। भगवान् शंकर से प्राप्त श्रीराम गाथा का सुन्दर रहस्य काकभुषुण्डि जी ने याज्ञवल्क्यजी को सुनाया और फिर याज्ञवल्क्य जी ने कृपा कर भरद्वाज को सुनाया।

जाग वलिक मुनि परम विवेकी।
भरद्वाज राखे पद टेकी॥
सादर चरन सरोज पखारे।
अति पुनीत आसन बैठारे॥
करि पूजा मुनि सुजस वखानी।
वोले अति पुनीत मृदु बानी॥

एक वार पूरे मकर भर स्नान करने के बाद जव सव मुनीश्वर अपने-अपने आश्रम को लौट गये तो भरद्वाजजी ने परम ज्ञानी याज्ञवल्क्यजी महाराज के चरणों को पकड़ कर रख लिया। आदर पूर्वक उनके चरण धोये और बड़े ही पवित्र आसन पर उन्हें बैठाया। पूजा करके मुनि याज्ञवल्क्यजी के सुयश का वर्णन किया और फिर अत्यन्त पवित्र और कोमल वाणी वोले—

"कहत सो मोहि लागत भय लाजा।
जौं न कहउँ बड़ होइ अकाजा॥

मेरे मन में एक संदेह है जिसे कहते मुझे भय और लज्जा लग रही है और यदि नहीं कहता तो मेरी बड़ी क्षति होगी—कभी ज्ञान ही न होगा। किन्तु हे प्रभो! संतजन वेद-पुराण तथा मुनिजन कहते हैं।

"होइ न विमल विवेक उर गुर सन किएँ
दुराव॥"

अर्थात् गुरु के साथ छिपाव करने से हृदय में भी निर्मल ज्ञान नहीं होता।

"अस विचारि प्रगटउँ निज मोहू।
हरहु नाथ करि जन पर छोहू॥"

ऐसा सोचकर ही मैं अपना अज्ञान प्रगट करता हूँ। हे नाथ! सेवक पर कृपा करके इस अज्ञान का नाश कीजिए।

शिष्य का निष्कपट भाव देखकर याज्ञवल्क्यजी के मन में चन्द्रमा की किरणों के समान श्री राम की दिव्य लीला के रहस्य उदित हो उठे जिसे उन्होंने चकोर रूपी भरद्वाजजी को सुनाया।

कहउँ सो मति अनुहारि अब उमा संभु
संवाद।
भयउ समय जेहि हेतु जेहि सुनु मुनि
मिटिहि विषाद॥

अब मैं अपनी बुद्धि के अनुसार वही उमा और शिवजी का संवाद कहता हूँ जिसे सुनकर तुम्हारा मोह भ्रम भाग जाएगा।

तुलसीदास और संतजन संवाद

गोस्वामी तुलसीदासजी के मत में उपर्युक्त दृष्टान्त में श्रोता और वक्ता अथवा शिष्य और गुरु दोनों ही समान शील वाले और समदर्शी थे और श्रीहरि की लीला को जानते थे। किन्तु अब इस कलिकाल में ऐसा समय आ रहा है कि एक वार श्रवण करने से शिष्य का संदेह दूर न हो सकेगा। विनय और नम्रता के कारण तुलसीदास जी इस कलिकाल के मानव का स्वभाव अपने में

आरोपित करके कहते हैं कि वाराह क्षेत्र में वही गाथा (जो याज्ञवल्क्यजी ने भरद्वाजजी को सुनायी) मैंने अपने गुरुजी से सुनी किन्तु लड़कपन के कारण मैं भली प्रकार समझा नहीं।

श्रोता वकता ग्यान निधि कथा राम कै
गूढ़।
किमि समझौं मैं जीव जड़ कलि मल
ग्रसित विमूढ़॥

अर्थात् श्रीराम जी की गूढ़ कथा के वक्ता और श्रोता दोनों ज्ञान के खजाने होते हैं। मैं कलिकाल के पापों से ग्रसित महामूढ़ जड़ जीव भला उसे कैसे समझ सकता था? अतः गुरुदेव ने कृपा कर बार-बार सुनायी।

तदपि कही गुर बारहिं बारा।
समुझि परी कछु मति अनुसारा॥'

श्री गुरुदेव के बार बार कहने से बुद्धि के अनुसार वही कथा मेरी कुछ समझ में आयी।

अतः तुलसीदास जी कहते हैं कि वही गाथा जो उपर्युक्त तीन दृष्टान्तों में गुरु शिष्य परम्परा से गायी गयी है उसी कथा को मैंने अपने गुरुदेव से सूकर खेत में सुना और अब उसी गाथा को मैं भाषा में रचूँगा जिससे मेरे मन को संतोष होगा। एक तो यह रचना मेरे अपने संदेह, मोह और भ्रम को दूर करने वाली होगी और फिर संसाररूपी नदी को पार करने के लिए नाव का कार्य करेगी।

इस गाथा का नाम उन्होंने रामचरितमानस रखा। जो कोई भी व्यक्ति इस कलियुग के प्रभाव से विषय रूपी दावानल में जल रहा हो, संशय और मोह ने जिसे घेर रखा हो उसके लिए तो यह रामचरितमानस परम फल देने वाला है। गोस्वामीजी कहते हैं,

राम चरित मानस एहि नामा।
सुनत श्रवन पाइअ बिश्रामा॥
मन करि विषय अनल बन जरई।
होइ सुखी जौं एहि सर परई॥

जो इस रामचरितमानस को कानों से सुनता है उसे सुनते ही शान्ति मिलती है। मनरूपी हाथी विषय रूपी दावानल में जल रहा है, वह यदि इस रामचरितमानस रूपी सरोवर में आ पड़े तो सुखी हो जाय।

यह गुरु-शिष्य परम्परा का एक अनूठा दृष्टान्त है जिसमें गोस्वामी तुलसीदास गुरु हैं और श्रोतागण शिष्य। जो भी "हरहुनाथ करिजन पर छोहू," ऐसा कहकर रामचरित मानस सुनेगा या पढ़ेगा वह राम गाथा के रहस्य अवश्य जान पायेगा।

प्रत्येक धर्म-साधक एवं अध्यात्म-जिज्ञासु के लिए अवश्य पठनीय पुस्तक

पथ और पाथेय

लेखक - स्वामी ब्रह्मेशानन्द
प्रकाशक—श्रीरामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम,
जयप्रकाश नगर, छपरा-- ८४१ ३०१ (बिहार
पृष्ठ—२०१
मूल्य—१५ रुपये मात्र (डाक खर्च १० रुपये अलग)

श्रीरामकृष्ण की अंत्यलीला (३)

—स्वामी प्रभानन्द
सहायक सचिव, रामकृष्ण मठ एवं मिशन
अनुवादिका डॉ० नन्दिता भार्गव

(५)

दूसरे दिन बुधवार था, २० सितम्बर, १८८५ ई०। मास्टर महाशय स्कूल से लौटने के रास्ते श्रीरामकृष्ण को देखने आये। लगभग पचास मिनट उपस्थित रहे। कमरे में प्रवेश करते ही मास्टर महाशय ने सुना कि श्रीरामकृष्ण के लिए श्याम-पुकुर में नया मकान किराये में लेना तय किया गया है उसी के बारे में बातचीत हो रही है। श्रीरामकृष्ण, "मकान दिखला सकते हो ? राखाल देखकर आता।" श्रीरामकृष्ण (मास्टर महाशय से), "(मकान) कैसा है। कितनी दूर है ? देखना कि गंगा के जल से नहीं डूबे।"[1]

थोडी देर बाद श्रीरामकृष्ण कहते हैं, 'जूते (खरीदे हैं) तीन रुपये कीमत है और मछली तीन आने की है। बाबू राम ने कहा है कि वह एक रुपया देगा (पर) उसे रुपया) मिलेगा कहाँ से ? किशोरी को भी कैसे मिलेगा ?"

पगली फिर आयी है। दक्षिणेश्वर काली मन्दिर में विनय कृष्ण गोस्वामी के साथ एक लड़की आती थी। श्रीरामकृष्ण को काली की तथा ब्राह्म सगीत गाकर सुनाती थी। उसे सभी पगली कहते थे। वह अकसर आफत मचा देती थी। बाद में एक दिन श्रीरामकृष्ण ने काशीपुर उद्यान गृह में बताया था कि "पगली का मधुर भाव है। एक दिन दक्षिणेश्वर आयी थी। एकाएक रोने लगी। मैंने पूछा कि रो क्यों रही है ? तो बोली कि सिर में दर्द हो रहा है। एक दिन और भी आयी थी। मैं खाने ही बैठा था। आचानक बोली, 'दया नहीं की।" मैं सरल मति का– खाना खा रहा था। फिर कहने लगी, "मन से निकाल क्यों दिया ?" मैंने पूछा, तेरा भाव क्या है ? तो बोली "मधुर भाव।"[2]

(६)

वृहस्पतिवार। आश्विन कृष्ण अष्टमी। अक्टूबर १८८५ ई०। सुबह का समय। मास्टर महाशय स्कूल जाते समय आये तथा एक घंटे से भी ज्यादा समय बलराम भवन में रहे। उन्हें लक्ष्य कर श्रीरामकृष्ण कहते हैं, "कल तीसरे पहर (पेट) बहुत गरम हो गया था। मल त्याग भी किया। आज नहा लूँ क्या ?

मास्टर महाशय, "नहीं (आपका शरीर) दुर्बल है बुखार न आ जाये।" मास्टर महाशय ने गिरीशचन्द्र से पूछा, "कल अपराह्न में आप थे क्या ?" गिरीश, 'नहीं"।

मास्टर महाशय, "वैद्य को आ जाने दीजिए, उसके बाद देखेंगे।" लीला प्रसंग के लेखक ने अपनी पुस्तक में एक घटना का उल्लेख किया है (श्रीरामकृष्ण भक्त मालिका नामक पुस्तक के अनुसार)। वृहस्पतिवार और रविवार को सेंट जेवियर्स कॉलेज में छुट्टी रहती थी। अतः वृहस्पतिवार और रविवार को ही शरतचन्द्र श्रीरामकृष्ण को देखने आते थे। सम्भवतः इस दिन ही शरतचन्द्र ने श्रीरामकृष्ण के पास उपस्थित होकर एक अत्यन्त आश्चर्यजनक लीला-विलास देखा था। तीसरे पहर बलराम भवन में शरत्चन्द्र आकर देखते हैं कि दुमंजिले पर क,

"हाल" लोगों से भरा हुआ है। गिरीशचन्द्र और उनके साथी काली पद गाना गा रहे हैं —

आमाय धरो निताई।
आमार प्राण आज करे रे केमन ॥

निताई मुझे धरो, न जाने आज मेरा मन क्यों विकल हो रहा है ?

कमरे के पश्चिम भाग में पूर्व की ओर मुख किये श्रीरामकृष्ण बैठे हैं और समाधिस्थ हो गये हैं। आपके मुख मण्डल पर प्रसन्नता और आनन्द की अपूर्व हंसी खिल रही है। आपका दक्षिण चरण प्रसारित है। सामने बैठा एक सज्जन परम प्रेम पूर्वक उस चरण को अपने वक्ष-स्थल पर धारण किये हुए है। वह सज्जन रमणीय और भक्तिमान लग रहा था। श्रीरामकृष्ण के पद प्रान्त में जो इस प्रकार बैठा हुआ है, उसके नेत्र बन्द हैं तथा मुख और वक्षस्थल अश्रुधाराओं से प्लावित हो रहे हैं। वहाँ पूर्णतया शान्ति थी। एक दिव्य भावावेश चारों ओर फैला हुआ है, ईश्वरीय गान चलने लगा।

आमार प्राण जेनो आज करे रे केमन,
आमाय धरो निताई।
(निताई। जीव के हरिनाम विलाते
उठलो जे ढेऊ प्रेम नदी ते।
सेई तरंगे एखन आमि भासिये जाई
(निताई) खत लिखेई आपन हाते,
अष्ट सखी साक्षी ताते
(एखन) कि दिये शुधिवो आमि प्रेमेर महाजन।
(आमार। संचित धन फुराइलो
तोबु ऋणेर शोध न होलो,
प्रेमेर दाये एखन आमि विकाइये जाई।

(मेरा मन न जाने आज क्यों विकल हो रहा है। (निताई) मुझे धरो। (निताई), जीव को हरिनाम बाँटने के लिए प्रेम नदी में लहरें उठने लगी, उस लहर में अब मैं बहता जा रहा हूँ। (निताई) मैंने अपने हाथ से नमस्मुक लिखा है, आठ सहेलियाँ उसमें साक्षी हैं। अब मैं वह ऋण प्रेम के महाजन को कैसे चुकाऊँ। मेरा संचित धन समाप्त हुआ है, तो भी ऋण का चुकता नहीं हुआ। प्रेम के ऋण में अब मैं बिक जा रहा हूँ।)

गीत समाप्त होने पर श्रीरामकृष्ण देव ने अर्धबाह्य दशा प्राप्त होकर, सामने के व्यक्ति से कहा, "बोलो श्रीकृष्ण-चैतन्य — बोलो श्रीकृष्ण-चैतन्य-बोलो श्रीकृष्ण चैतन्य।" इस ढंग से लगातार तीन बार उसे इस नाम को उच्चारण कराने के थोड़ी देर बाद श्रीरामकृष्ण पुनः प्रकृतिस्थ होकर दूसरों से बातचीत करने लगे।[1] विशेष कृपा प्राप्त उस व्यक्ति का नाम नित्य गोपाल गोस्वामी है।[2] ढाका के जगन्नाथ कॉलिज में प्राध्यापक हैं। नित्य गोपाल के पिता कृष्ण गोपाल गोस्वामी (१८१०-८८) बड़े गोसाईं के नाम से प्रसिद्ध थे। इन्होंने ही पूर्वी बंगाल में वैष्णव भावधारा को लोकप्रिय बनाया था। नित्य गोपाल विभिन्न धर्मों के बारे में जानने के लिए सचेष्ट रहते थे। वे पहले ब्रह्मसमाज, फिर थियोसॉफिकल सोसायटी और कुछ समय के लिए एक नास्तिक दल के साथ संलग्न हुए थे। अन्त में सौभाग्यवश वे विजयकृष्ण गोस्वामी के जरिये श्रीरामकृष्ण के सम्पर्क में आये। उन्होंने श्रीरामकृष्ण को पहली बार १८८४ ई० के मध्यभाग में दक्षिणेश्वर में देखा था। इस बार ठाकुर की भयंकर व्याधि का समाचार पाकर ढाका से आपको देखने आये हैं।[3]

इसी दिन एक और अनोखी घटना हो गयी। तीसरे पहर साढ़े चार बजे स्कूल से लौट कर मास्टर महाशय बलराम भवन आये। पानी बरस रहा था। डाक्टर प्रताप मजूमदार श्रीरामपुर चले गये थे। इसलिए उस दिन वह नहीं आये। अतः श्रीरामकृष्ण के बारे में उन्हें एक पत्र लिखा गया।

संध्या के समय लगभग सात बजे पंडित शशधर तर्क चूड़ामणि बलराम भवन आये। शशधर एक साधक, प्रकाण्ड विद्वान और प्रसिद्ध हिन्दू धर्म प्रचारक थे। उन्होंने श्रीरामकृष्ण को

१०

२५ जून १८८४ ई० में रथ यात्रा के दिन पहली बार देखा था। उसके बाद चूड़ामणि ने श्रीरामकृष्ण को कई बार और देखा। श्रीरामकृष्ण की संकटपूर्ण व्याधि का समाचार पाकर वे आज देखने आये हैं।

श्रीरामकृष्ण चूड़ामणि को देखकर प्रसन्न हुए। चूड़ामणि ने ठाकुर की पीड़ा के बारे में पूछा और कष्टदायक रोग के लिए चिन्ता प्रकट की। श्रीरामकृष्ण ने परिहास कर पण्डित से कहा, "चक्रवर्ती छोड़ नहीं रहा है—बीमारियां तो सभी के शरीर में हैं बड़े छिद्र को कितना भरोगे? यह देह अब और नहीं ले सकती है।" इसके बाद आपने एक कहानी सुनायी जो एक मठवासी साधु की मार खाकर बेहोश हो जाने की थी होश में आने पर साधु ने कहा था, 'जो दूध पिला रहा है, उसीने पीटा है।'[4] चूड़ामणि भी रंगप्रिय हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण को कहा, "आप समाधिस्थ होकर रहिए और मैं स्वस्त्ययन करूँ - आप कहिए कि देश भ्रमण के लिए जाना है! यह मालूम नहीं कि तर्क चूड़ामणि के इस प्रस्ताव के ऊपर श्रीरामकृष्ण की प्रतिक्रिया क्या थी।

कुछ देर बाद श्रीरामकृष्ण से विदा लेकर शशधर वहाँ मौजूद दूसरे लोगों से बात करने लगे। हंसी मजाक करते रहे। कुछ समय तक ऊँची आवाज में पण्डित की हंसी श्रीरामकृष्ण सुनते रहे। फिर आप भी वहाँ आ गये। किन्तु पण्डित ठाकुर की उपस्थिति से विस्मरणशील रहे।

उस रात को मास्टर महाशय बलराम भवन रह गये। बहुत रात को श्रीरामकृष्ण की पीड़ा अधिक बढ़ गयी। रात के साढ़े तीन बजे थे। मास्टर महाशय पंखा लेकर ठाकुर को हवा करने लगे। श्रीरामकृष्ण, "हवा करोगे?—अब नहीं चाहिए—इतना कष्ट अब और सहा नहीं जाता।"

श्रीरामकृष्ण (सेवक हरीश से)—"सारी रात नींद नहीं आयी।" मास्टर महाशय की ओर दृष्टि पड़ते ही ठाकुर ने एकाएक कहा, "कहाँ? मईन्द्र की अब रक्षा नहीं कर पाया——।" मास्टर महाशय ठाकुर श्रीरामकृष्ण के पैर हाथों से सहलाते रहे। सेवक बाबूराम पंखे से धीरे-धीरे हवा करने लगे।

भोर साढ़े चार बजे मास्टर महाशय बलराम भवन से निकल पड़े। गंगा नहा कर लगभग छः बजे लौट आये। उन्होंने देखा कि श्रीरामकृष्ण सो रहे हैं।

---

१. दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण के कमरे में बहुत सीलन थी। पूंथि के लेखक कहते हैं, "सेई हेतु श्रीप्रभुर मन्दिराभ्यन्तर। अतिशय जले सिकत रहे निरन्तर॥ बरसात के समय गंगा में जल बढ़ जाने से श्रीरामकृष्ण का कमरा सील जाता था और बड़ी परेशानी होती थी। अतः गगा के निकट किराये में लिया गया नये मकान के लिए श्रीरामकृष्ण पूछ रहे थे कि वहाँ सीलन तो नहीं होगी।

२. श्रीरामकृष्ण वचनामृत, भाग तीसरा पृ० ५१९-२०)

१. स्वामी सारदानन्द श्रीरामकृष्ण लीला प्रसंग तीसरा भाग पृ० २२१-२२२

२. लीला प्रसंग (३/२९९) तथा पूंथि पृ० ३८६) में इनका नाम नृत्य गोपाल बताया गया है।

३. प्रबुद्ध भारत, जनवरी १९८० पृ०-१९२१

४. किसी एक मठ के साधुगण रोज भिक्षा माँगने जाते थे। एक दिन भिक्षा करते समय उस मठ के एक साधु ने देखा कि जमींदार किसी व्यक्ति को पीट रहा है। साधु बहुत दयालु था। उसने जमींदार से कहा कि वह उसे नहीं पीटे। जमींदार बहुत क्रोध में था। अतः उसने अपना सारा क्रोध उस साधु पर ही उतारा। जमींदार ने साधु को इतना पीटा कि वह बेहोश हो गया। किसी ने जाकर मठ में सूचना दी कि उनके एक साधु को जमींदार ने खूब पीटा है। मठ से दूसरे साधुलोग भागते हुए वहाँ आये और देखा कि साधु बेहोश पड़ा है। मठवासी उदास हो गये और उसे घेर कर बैठे रहे। उसे पखा झेलना शुरु किया। किसी ने बताया कि मुंह में तनिक दूध देकर देखना चाहिये। मुंह में दूध देते ही उस साधु को होश आ गया और वह आखें खोल कर देखने लगा। तब किसी ने पूछा, "क्या तुम्हें होश आ गया है? क्या तुम हमें पहचान रहे हो? तुम्हें दूध कौन पिला रहा हैं?" उस ने धीरे-धीरे उत्तर दिया, "भाई जिसने मुझे मारा था, वही अब दूध पिला रहा है।" श्रीरामकृष्ण वचनामृत-प्रथम भाग पृ० २६५-६६ (नवम संस्करण)

श्रेष्ठ भक्त माँ सारदा

स्वामी ब्रह्मेशानन्द
रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

श्रीरामकृष्ण का कथन है कि कलिकाल के लिए नारदीया-भक्ति भगवद् दर्शन का सबसे उपयुक्त साधन है। इसमें ज्ञानयोग की तरह अधिकारी-विचार इतना महत्वपूर्ण नहीं है, कोई भी भक्तियोग की साधना कर सकता है। हाँ, यह बात अवश्य है कि अन्य योगों की तरह इसमें भी कुछ प्रारंभिक तैयारियाँ, कुछ विधि-विधान होते हैं, जिनके अनुष्ठान से साधक में धीरे धीरे भगवान के प्रति प्रेम उपजता है। इसे वैधी भक्ति कहा जाता है, जबकि भगवान के प्रति प्रेम उत्पन्न होने पर जो भक्ति होती है, उसे मुख्यातया पराभक्ति कहते हैं। माँ सारदा की मुख्य साधना प्रणाली भक्तियोग की ही थी। उन्होंने भक्ति के सभी गौण अंगों का अनुष्ठान किया था तथा परा भक्ति के स्तर पर भी आरूढ़ हुई थीं।

वैधी भक्ति

रामानुजाचार्य के अनुसार विवेक, विमोक, अभ्यास, क्रिया या पंचयज्ञ कल्याण, अनवसाद और अनुद्धर्ष, गौणी भक्ति के अग हैं। विवेक का अर्थ है जाति, निमित्त और आश्रय—इन तीनों दोषों से रहित शुद्ध अन्न को ग्रहण करना। इस विषय में माँ काफी सतर्क थीं। वे सदा ही श्रीरामकृष्ण को निवेदित किये शुद्ध अन्न को ही ग्रहण करती थीं। ऐसे अनेक दृष्टान्त हैं जहाँ माँ ने व्यक्ति विशेष के द्वारा लायी वस्तु को स्वीकार नहीं किया क्योंकि वह किसी न किसी दोष से दूषित था। शंकराचार्य ने विवेक की व्याख्या, समस्त ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा ग्रहण किये जा रहे विषयों के विषय में सतर्कता बरतना की है। इस दृष्टि से भी माँ ने अपनी सभी इन्द्रियों से सदा शुभ एवं शुद्ध विषयों का ही सेवन किया था। विमोक का अर्थ है वासनाशून्य, या इच्छारहित होना। इसकी व्याख्या वैराग्य के सन्दर्भ में पहले ही की जा चुकी है। भगवन्नाम गुण गान, तथा निरन्तर भगवच्चिन्तन, भक्ति की भाषा में अभ्यास कहलाता है। माँ प्रतिदिन एक लाख जप किया करती थीं। वे स्वयं अच्छा गा सकती थीं, तथा भजन कीर्तन में विशेष रुचि रखती थीं।

भक्ति शास्त्र में पंचयज्ञों को क्रिया की संज्ञा दी गयी है। पहला है ब्रह्मयज्ञ स्वाध्याय। माँ स्वाध्याय नियमित रूप से करती थीं, यह हम पहले ही देख चुके हैं। माँ ने गया में जाकर पितरों को तर्पण, श्राद्धादि के रूप में पितृयज्ञ किया था। ब्राह्मण कुल में जन्म लेने के कारण वे बाल्यकाल से ही देवी-देवताओं की पूजा, या देवयज्ञ किया करती थीं। उन्होंने अतिथि पूजन रूप नृयज्ञ सारे जीवन किया। यही नहीं, तोता, बिल्ली, गाय आदि को खिलाना रूप भूतयज्ञ भी वे नित्य प्रति करती थीं। सामान्य पशु से लेकर छोटे बड़े देवी-देवताओं, सभी को वे सेवा पूजा करती थीं। उनकी एक प्रसिद्ध उक्ति है, "जो जिसका प्राप्य है, वह उसे देना चाहिए।"

सत्य, आर्जव, दान, दया और अहिंसा कल्याण के अन्तर्गत आते हैं। सत्य और अहिंसा की व्याख्या राजयोग में की जा चुकी है। आर्जव अर्थात् सरलता। माँ सारदा सरलता की प्रतिमूर्ति थीं,

यह कहने की आवश्यकता नहीं। माँ कह कर कोई भी उनसे कुछ भी करवा सकता था। वे दयालु तथा करुणामयी थीं। पतित से पतित व्यक्ति भी उनकी दया से वंचित नहीं होता था। उनके द्वारा मुक्त हस्त से द्रव्यादि के दान का उल्लेख अपरिग्रह की व्याख्या के अन्तर्गत किया जा चुका है। केवल इतना ही नहीं। यावज्जीवन उन्होंने लोगों को वस्तुएं ही नहीं दीं, बल्कि दीक्षा के समय महामंत्र, अभयदान तथा ज्ञानदान देकर असंख्य नर नारियों को धन्य किया था। श्रीरामकृष्ण की जीवद्दशा में या उसके बाद भी कभी उन्हें अवसाद ग्रस्त नहीं देखा गया। वे स्वयं कहती थीं कि श्रीरामकृष्ण के रहते, दक्षिणेश्वर में उनके दिन अत्यन्त आनन्द से बीतते थे। इतना होते हुए भी वे अत्यन्त लज्जा-शीला थीं, एवं उनका आनन्द, भाव आदि विरले ही बाहर प्रकट होता था (अनुद्धर्ष)।

ऊपर हमने रामानुजाचार्य के अनुसार भक्ति के साधनों का वर्णन किया। इनका मुख्य उद्देश्य चित्तशुद्धि तथा हृदय में प्रेम का संचार करना है जिसे भगवान की ओर मोड़ा जा सके। नारद ने अपने भक्ति सूत्रों में और भी अनेक साधनों का वर्णन किया है जिनमें से अधिकांश माँसारदा के जीवन में पाये जाते हैं। पहला है, असत् चरित्र वाले लोगों का संग त्याग। इस विषय में स्वयं श्रीरामकृष्ण की दृष्टि बड़ी तीक्ष्ण थी। साधना की अवस्था में वे अपने सभी शिष्यों की कुसंग से रक्षा करने में सदा तत्पर रहते थे। श्रीरामकृष्ण के भानजे रामलाल को भी वे माँ के पास अधिक समय नहीं रहने देते थे। एक महिला जिसका चरित्र यौवनकाल में अच्छा नहीं था, माँके पास आया करती थी। इस पर भी श्रीरामकृष्ण ने आपत्ति की थी। परवर्ती काल में उपर्युक्त दोनों घटनाओं का उल्लेख कर माँ यह बताने का प्रयत्न करती थीं कि किस प्रकार श्रीरामकृष्ण माँ की कुसंग से रक्षा किया करते थे। दूसरा साधन है भोग्य विषयों का त्याग जिसका वर्णन वैराग्य के अन्तर्गत किया जा चुका है। तीसरा है विविक्त सेवन—अर्थात् निर्जन में निवास करना। भक्तों के आगमन के पूर्व माँ का निवास स्थान—नहबतखाना अत्यन्त एकान्त स्थान था। श्रीरामकृष्ण की एकनिष्ठ सेवा द्वारा माँ का "महानुभाव सेवन" सधा था। परमहंस देव की पत्नी के रूप में पूजित होने अथवा देवी भगवती, आदि के रूप में असंख्य भक्तों द्वारा आराधित होने पर भी माँ को अहंकार छू तक नहीं गया था। वे स्वयं कहती थीं कि लोग आ आकर देवी, भगवती आदि कहते हैं, पर मुझे तो यही लगता है कि मैं तो वही राम मुखर्जी की कन्या ही हूँ। इससे अधिक "अभिमानदंभादिकं त्याज्यम्" का दृष्टान्त और क्या हो सकता है? श्रीरामकृष्ण के कमरे में रात दिन हो रहे "भगवत् गुण श्रवण कीर्तन" को माँ दूर से ही सदा सेवन करती थीं। नारद के अनुसार भक्त को "क्षणार्धमपि व्यर्थं न नेयं"। माँ सारदा भी कभी खाली नहीं रहती थीं। या तो वे श्रीरामकृष्ण या भक्तों की सेवा में लगी रहती थीं या फिर जप करने बैठ जाती थीं। इन सब के अतिरिक्त नारद के अनुसार भक्ति का मुख्य साधन है: मुख्य तस्तु महतकृपयैव भगवत् कृपा लेशात्।" अवतार-कल्प महापुरुष श्रीरामकृष्ण की विशेष कृपा रूपी भक्ति का सबसे प्रमुख उपाय या साधन, माँ को प्राप्त हुआ था।

सद्गुरु से इष्ट मंत्र की प्राप्ति एवं उसका निष्ठापूर्वक दीर्घकाल तक निरन्तर जप भक्ति का सबसे महत्वपूर्ण साधन है। माँ सारदा को एक संन्यासी स्वामी नित्यानन्द ने जगद्धात्री देवी के मंत्र द्वारा दीक्षित किया था। बाद में श्रीरामकृष्ण को गुरु रूप में स्वीकार कर उनके निर्देशानुसार माँ ने साधनाएँ की थीं। श्रीरामकृष्ण ने उन्हें जिह्वा पर मंत्र लिखकर दीक्षित किया था।

पराभक्ति :

इष्ट के साथ शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर, इन विभिन्न भावों में से एक या अनेक

के माध्यम से सम्बन्ध स्थापित करना, भक्ति का अन्तरंग साधन है। उपर्युक्त पाँच भावों के अतिरिक्त मातृभाव या अपत्यभाव भी है, जिसमें भगवान को अपना पिता या माता समझा जाता है। प्रारम्भ में माँ का भगवान के प्रति भातृभाव था। लेकिन श्रीरामकृष्ण के माध्यम से माँ में अन्य भावों का भी विकास हुआ था। एक अवस्था में श्रीरामकृष्ण व माँसारदा दोनों अपने को माँ जगदम्बा की दासियाँ समझते थे। इस तरह दास्य और सख्य भाव दोनों ही सधे थे। अगर श्रीरामकृष्ण को माँसारदा का एक साथ गुरु व इष्ट माना जाए तो उनकी पत्नी होने के नाते माँसारदा का मधुर भाव भी सध गया था। परवर्तीकाल में जगत् मातृत्व के विकास के साथ ही साथ माँ में वात्सल्य भाव प्रधान हो गया था। वे देवी देवताओं को भी अपनी सन्तानें समझती थीं। भोग निवेदन के पूर्व जिस प्रकार वे देवी-देवताओं का आह्वान करती थीं, उससे लगता था मानो सचमुच वे उन्हें अपनी सन्तान के रूप में बुलाकर भोजन कराने ले जा रही हैं।

नारद भक्ति सूत्र में पराभक्ति पर आरूढ़ सिद्ध भक्तों के विभिन्न लक्षणों का वर्णन किया गया है, जो माँसारदा में भी प्रकट हुए थे।

(१) कण्ठावरोधरोमांचाश्रुभिः परस्पर लपमाना :—यह भाव का वर्णन है। विदित है कि माँ सारदा को दक्षिणेश्वर निवास काल में भाव हुआ करते थे, जिसमें उन्हें नेत्रों में अश्रु वर्षण एवं रोमांच हो आता था। श्रीरामकृष्ण के तिरोधान के बाद अपनी संगिनी योगीन माँ से वृन्दावन में मिलने पर दो विरही प्रेमियों की तरह रोते हुए माँ ने योगीन माँ का आलिंगन किया था। (२) भक्ता एकान्तिनो मुख्याः—अर्थात् एकनिष्ठ भक्त प्रमुख होते हैं। माँ की श्रीरामकृष्ण के प्रति एकनिष्ठ भक्ति प्रसिद्ध ही है। (३) तीर्थी कुर्वन्ति तीर्थानि—ऐसे श्रेष्ठ भक्त तीर्थों को तीर्थाकृत कर देते हैं। माँ सारदा जिन जिन स्थानों पर रहीं यथा जयरामबाटी, नहबतखाना उदबोधन, वे सारे स्थान आज महातीर्थ में परिणत हो गये हैं।

इन लक्षणों के अतिरिक्त स्वामी विवेकानन्द ने पराभक्ति के तीन लक्षण बताये हैं (१) भय का अभाव, (२) प्रतिद्वंद्विता का अभाव, (३) प्रेम ही प्रेम का उच्चतम आदर्श होता है। माँ तो स्वयं असंख्य भक्तों को संसार-ज्वाला से मुक्ति और अभय प्रदान करती थीं। श्रीरामकृष्ण के प्रति तीव्र भक्ति होते हुए भी माँ ने कभी उनके अन्य स्त्री अथवा पुरुष भक्तों से ईर्ष्या नहीं की। कभी-कभी महीनों तक इतने निकट रहते हुए भी वे श्रीरामकृष्ण के दर्शन नहीं कर पाती थीं; फिर भी उन्होंने कभी न तो इसकी शिकायत की और न अन्य किसी को कोसा। एक पगली जो श्रीरामकृष्ण के प्रति मधुर भाव रखती थी, तथा सभी को काफी तंग करती थी, और इसीलिए सभी के द्वारा प्रताड़ित भी होती थी, उसे भी माँ ने आश्रय देकर अपने पूर्ण-ईर्ष्या-द्वेष-रहित हृदय का परिचय दिया है। और माँ सारदा की भक्ति व प्रेम केवल प्रेम के लिए ही था। उन्होंने श्रीरामकृष्ण के प्रेम का कोई प्रतिदान कभी न तो माँगा और न ही कभी उसकी इच्छा ही की।

पराभक्ति-आरुढ़ भक्त को भाव दर्शन और समाधियाँ भी हुआ करती हैं। माँसारदा के भाव का वणन हम पहले ही कर चुके हैं। माँ को विभिन्न देवी देवताओं के दर्शन हुआ करते थे। भाव समाधि को प्रगाढ़ता में श्रीरामकृष्ण के साथ पूर्ण तादात्म्य को अवस्था भी उन्हें वृन्दावन में प्राप्त हुई थी। इष्ट के साथ इस एक रूपता को ही भक्ति को चरम स्थिति माना जाता है। और जब सभी प्राणियों को अपने इष्ट का रूप अथवा इष्ट की सन्तानें मान कर प्रेम किया जाता है, तब यह भक्ति का सर्वश्रेष्ठ रूप है :

एवं सर्वेसु भूतेषु भक्तिर्व्यभिचारिणी।
कर्तव्या पण्डितैर्ज्ञात्वा सर्वभूतभयं हरिम्॥

सर्वत्र, सभी में प्रभु का दर्शन करने के फल-स्वरूप माँ सारदा सभी की समान भाव से सेवा कर सकी थीं।

उपर्युक्त लक्षणों के अतिरिक्त प्रेमा भक्ति या पराभक्ति अन्य प्रकारों से भी प्रकट होती है। यथा श्रद्धा, प्रीति, विरह, एक रति विचिकित्सा, तदर्थ प्राण संस्थान, तथा तदीयता यह स्पष्ट है कि माँ सारदा के जीवन में भक्ति की ये अभिव्यक्तियाँ प्रकट हुई थीं। इनका विस्तार करना यहाँ आवश्यक नहीं है।

माँ सारदा के जीवन का यह पक्ष विशेष अनुध्यान योग्य एवं सामान्य साधकों के लिए प्रेरणास्पद है। एक व्यस्त गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करते हुए भी माँसारदा भक्ति के विभिन्न गौणी अंगों का जिस निपुणता से अपने जीवन में अनुष्ठान कर सकी थीं, वह सभी भक्तों के लिए अनुकरणीय है।

विवेक शिखा–स्थायी कोष के दाता

१.	एक भक्तिमती महिला	इलाहाबाद	५,००० रुपये
२.	एक शुभैषी	पुणे	२०० रुपये
३.	श्री एस० के० चक्रवर्ती	इलाहाबाद	२७ रुपये
४.	श्री पृथ्वीराज शर्मा	ठण्डी, राजस्थान	३०० रुपये
५.	श्री दीपक श्रीवास्तव	पटना (बिहार)	१०१ रुपये
६.	एक शुभ चिन्तक	इलाहाबाद	२५० रुपये
७.	भी० वी० उरकुडे	चन्द्रपुर (महाराष्ट्र)	५० रुपये
८.	श्रीमती शान्ति देवी	इन्दौर (मध्य प्रदेश)	१०० रुपये
९.	श्री एस० डी० शर्मा	अहमदाबाद	३०१ रुपये
१०.	श्रीमती प्रभा भार्गव	बीकानेर (राजस्थान)	२०० रुपये
११.	श्री रामलायक सिंह	सम्होता (छपरा)	२५ रुपये
१२.	डा० एस पी० भार्गव	अजमेर	१०० रुपये
१३.	श्री राम छविला सिंह	मुजफ्फरपुर	२५ रुपये
१४.	श्री निखिल शिवहरे	दमोह (म० प्र०)	१५१ रुपये
१५.	श्रीमती उषारानी कर्ण	सुरसंड, सीतामढ़ी)	१०० रुपये
१६.	श्री पी० सी० सरकार	नरेन्द्रपुर (प० ब०)	१०० रुपये
१७.	श्रीमती मीरा मित्रा	इलाहाबाद	२०१ रुपये
१८.	श्री गोपाल शं० तायवाडे	अमरावती (महाराष्ट्र)	१०० रुपये
१९.	श्री महादेव शि० गुंडावार	भद्रावती (महाराष्ट्र)	५० रुपये
२०.	श्री राजीव कुमार राजू	सैदपुर, पटना-४	३१ रुपये
२१.	श्री राज सिंह	गाजियाबाद (उ० प्र०)	५० रुपये

श्रीरामकृष्ण के मारवाड़ी भक्त

श्रीदेवव्रत वसुराय

['श्रीरामकृष्णेर मारोयाड़ी भक्त' शीर्षक बंगला लेख 'उद्बोधन' के अप्रैल १९९० अंक में प्रकाशित हुआ था। हिन्दी भाषी पाठकों के लिए इसका हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया जा रहा है। अनुवादक हैं – डॉ० केदार नाथ लाभ । सं०]

दक्षिणेश्वर के भागवत पुरुष श्रीरामकृष्ण का उन्मुक्त द्वार। जाति, धर्म का विचार किये बिना भक्तों के लिए उनकी करुणा का सागर स्वतः ही लहराता रहता था। किस प्रकार मनुष्य का कल्याण होगा, मनुष्य 'मान-होश' में रूपान्तरित होगा, कैसे उसका जीवन ईश्वरोन्मुखी होगा – यही था प्रेम के मूर्त प्रतीक श्रीरामकृष्ण का सचेष्ट प्रयास। प्रस्फुटित कमल का पता लग जाने पर मधुमक्खियों की भीड़ तो हुगी ही। उनके सर्वदा ईश्वर साक्षात्कार, बार-बार समाधि, सर्वधर्म समन्वय, ज्ञान की गहनता, भक्ति का माधुर्य, असाधारण वैराग्य, अभूतपूर्व पवित्रता, शिशु की भाँति सरलता आदि की बातें लोगों के द्वारा जितनी ही फैलती जातीं उतना ही दक्षिणेश्वर में भक्तों का समागम भी बढ़ता जाता।

भक्त समागम के प्रथम चरण से ही मारवाड़ी भक्तगण भी दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण के पास आने-जाने लगे।

दक्षिणेश्वर के काली मंदिर के निकट ही सरकार का बारूदखाना था। इस बारूदखाने का पहरा करने के लिए सिख सैनिकों एक दल नियुक्त था। कुँअर सिंह उन सैनिकों के हवलदार थे। ये सिख सैनिक श्रीरामकृष्ण को गुरु नानक देव का अवतार मानते थे तथा उनके प्रति गुरु की भाँति श्रद्धा-भक्ति रखते थे। कहना न होगा कि इन सिखों के माध्यम से ही बड़ाबाजार के मारवाड़ीगण श्रीरामकृष्ण के विषय में जान पाये थे। इसके अतिरिक्त, भारतवर्ष के विभिन्न अंचलों से साधु-संन्यासीगण पुरी में जगन्नाथ दर्शन और गंगासागर में स्नान करने के लिए आकर रास्ते में दक्षिणेश्वर में कई दिनों तक ठहर जाते थे। उनलोगों के द्वारा भी परमहंसदेव के विषय में मारवाड़ी भक्तगण सुना करते थे। फिर दक्षिणेश्वर के मन्दिर आदि का दर्शन करने आकर मारवाड़ी भक्तगण भी श्रीरामकृष्ण का दर्शन कर तथा उनके सम्बन्ध में सुनकर अपने आत्मीय बन्धुओं से ठाकुर श्रीरामकृष्ण के विषय में बताया करते थे। इस प्रसंग में यह उल्लेख किया जा सकता है कि ठाकुर के प्रथम संन्यासी शिष्य नारायण शास्त्री, जिन्होंने लम्बे अर्से तक दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण का संग किया था, भी राजस्थान के ही जयपुर के निकट शेखावत के निवासी थे। मारवाड़ियों के घरों में श्रीरामकृष्ण के विषय में प्रचार होने में उनका भी कुछ सक्रिय भूमिका का होना सम्भव है, जो हो, श्रीरामकृष्ण का प्रसंग मारवाड़ियों के बीच भली-भाँति प्रचारित हुआ था, इस में कोई सन्देह नहीं। गुरुदास वर्मन ने लिखा है – "इन्हीं दिनों बड़ाबाजार के झुंड के झुंड मारवाड़ीगण श्रीरामकृष्णदेव का दर्शन करने आया करते थे।" [१]

पहली पाली में आने वाले मारवाड़ी भक्तों में लक्ष्मीनारायण का वि शिष्ट स्थान है। चवनामत'

को व्यक्ति सूची में प्रथम चरण के भक्तों में उनका स्थान है। गुरुदास वर्मन ने इनका नाम लछमीपत कहा है। तथापि श्रीरामकृष्ण उन्हें लक्ष्मीनारायण ही कहते और इसी नाम से वे सभी लोगों में परिचित थे। वे केवल धनी ही नहीं थे, शास्त्र आदि में भी उनकी विशेष अभिज्ञता थी। वेदान्त का अध्ययन कर वे ज्ञानमार्गी हो गये थे। वे अक्सर दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण के पास आते और श्रीरामकृष्ण के साथ अनेक प्रकार के तत्वों के विवेचन से आनन्द प्राप्त करते। ठाकुर के प्रति उनकी विशेष भक्ति थी। 'श्रीरामकृष्ण पूँथि' के रचयिता लिखते हैं - 'सरल प्रकृति आर धर्म तृष्णातुर। इसी हेतु कृपा दृष्टि से देखते ठाकुर।'[३] वचनामृत में हम देखते है कि श्रीरामकृष्ण ने उनके लिए दो विशेषणों का प्रयोग किया है—'वेदान्तवादी' और सूक्ष्म बुद्धि।"

बहुत दिनों से लक्ष्मीनारायण को श्रीरामकृष्ण की सेवा के लिए कुछ रुपये भेंट करने की लालसा थी। एक दिन श्रीरामकृष्ण का विस्तरा मैला देखकर उन्होंने श्रीरामकृष्ण के समक्ष प्रस्ताव रखा कि वे ठाकुर के नाम से दस हजार रुपयों का कम्पनी का कागज खरीद कर देंगे जिसके व्याज से श्रीरामकृष्ण की सेवा आदि होगी, उन्हें किसी दूसरे का मुखापेक्षी नहीं होना होगा। लक्ष्मीनारयण का प्रस्ताव सुनकर श्रीरामकृष्ण की क्या प्रतिक्रिया हुई यह उन्होंने स्वयं कहा है "उसने यह बात कही नहीं कि मैं जैसे लाठी की चोट खाकर बेहोश हो गया। होश आने पर उससे कहा, तुम्हें अगर ऐसी बातें करनी हों, तो यहाँ फिर कभी न आना। मुझमें रुपया छूने की शक्ति ही नहीं है।"[४] तब लक्ष्मीनारायण ने श्रीरामकृष्ण के सेवक हृदय के हाथ में वह रुपया देना चाहा। ठाकुर ने उस प्रस्ताव को भी अस्वीकार कर दिया। उन्होंने कहा 'तो मुझे कहना होगा, 'इसे दे,' उसे दे,' अगर उसने न दिया तो क्रोध का आना अनिवार्य होगा। रुपयों का पास रहना ही बुरा है। ये सब बातें न होंगी।"[५]

फिर भी लक्ष्मीनारायण पीड़ित करते हुए अनुरोध करते रहे। तब श्रीरामकृष्ण बालक की भाँति रोने लगे। उन्होंने कहा—'माँ, ऐसे व्यक्ति को यहाँ क्यों भेजती हो माँ, ये सब तो तुमसे अलग कर मुझे नष्ट करना चाहते हैं माँ।"[६] रोते-रोते श्रीरामकृष्ण समाधिस्थ हो गये। लज्जित होकर लक्ष्मीनारायण ने श्रीरामकृष्ण से क्षमा याचना की तथा उस दिन विदा ली। श्रीरामकृष्ण ने भी अपनी स्वाभाविक मीठी बातों से लक्ष्मीनारायण को शान्त किया।

इस प्रसंग में यह स्मरणीय है कि श्रीरामकृष्ण के अन्यतम रसददार मथुर बाबू ने भी एक बार उनके नाम से 'हजार रुपयों की सम्पत्ति" लिख देनी चाही थी। श्रीरामकृष्ण ने वह प्रस्ताव भी दृढ़ता पूर्वक अस्वीकार कर दिया था।

जो हो, लक्ष्मीनारायण श्रीरामकृष्ण की कृपा से वंचित नहीं हुए थे। उनके सूतापट्टी स्थित निवास भवन में श्रीरामकृष्ण ने अपनी चरणधूलि दी थी।[७]

परवर्त्तीकाल में भी लक्ष्मीनारायण ने श्रीरामकृष्ण से सम्पर्क बनाये रखा था, इसका प्रमाण काशीपुर की एक घटना के विवरण से पाया जाता है। काशीपुर में जब श्रीरामकृष्ण रुग्ण थे तब उनके गृही भक्तगण ही उनकी सेवादि के लिए आवश्यक रुपयों की व्यवस्था करते थे। एक बार अधिक खर्च तथा हिसाब-किताब को लेकर गृही भक्तों के साथ श्रीरामकृष्ण की त्यागी सन्तानों का विरोध हो गया। श्रीरामकृष्ण ने सब सुनकर विरक्त भाव से बड़ाबाजार के लक्ष्मीनारायण को बुला लाने कहा। स्वामी अभेदानन्द लिखते हैं कि श्रीरामकृष्ण ने इसके बाद ही कहा—"नहीं, किसी को भी बुलाने की और जरूरत नहीं है। जगन्माता जो करेंगी, वही होगा।"[८] किन्तु श्रीरामकृष्ण पूँथि (बंगला)

के रचयिता का कथन है कि समाचार मिलते ही लक्ष्मीनारायण रुपये लेकर उपस्थित हो गये। श्रीरामकृष्ण ने रुपये लेना अस्वीकार कर दिया। श्रीरामकृष्ण की सेवा के लिए अर्थदान करने को अत्यन्त व्याकुल लक्ष्मीनारायण वे रुपये वहाँ रखकर ही घर लौट आये।[9]

लक्ष्मीनारायण के सम्बंध में और विशेष कुछ नहीं जाना जाता है। तथापि १८९१ ई० में स्वामी अखण्डानन्द से एकबार दिल्ली में उनकी भेंट हुई थी। स्वामी अखण्डानन्द उन दिनों परिव्राजक थे। उसी समय एक मारवाड़ी सज्जन ने उन्हें रुपये देकर-प्रणाम किया। संन्यासी ने रुपये नहीं लिये। यह देखकर उन्होंने कहा "दक्षिणेश्वर में रामकृष्ण परमहंस को देखा था—कांचन त्यागी महापुरुष।' तब परिचय प्राप्तकर स्वामी अखण्डानन्द जान सके कि यही लक्ष्मीनारायण मारवाड़ी हैं। उन्होंने स्वयं कहा—"एक बार रामकृष्णदेव को दस हजार रुपये देने जाकर हार गया था।"श्रीरामकृष्ण के सम्बन्ध में बातचीत करने के लिए वे अखडानन्दजी को साथ लेकर अपने घर गये।[10]

स्वामी सारदानन्द दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण के पास आये १८८३ ई० में। उन दिनों श्रीरामकृष्ण के पास मारवाड़ी भक्तों के आवागमन के सम्बन्ध में वे लिखते हैं—कलकत्ते से हम स्त्री-पुरुष अनेक व्यक्ति जिस तरह श्रीराकृष्ण देव के दर्शनार्थ आया करते थे, उसी प्रकार बहुत से मारवाड़ी स्त्री-पुरुष भी समय-समय पर उनके दर्शनार्थ उपस्थित होते थे। वे लोग गाड़ियों में दक्षिणेश्वर के बगीचे में पहुँचते थे, फिर गंगास्नान कर पुष्पचयन करते तथा शिव का पूजन करने के पश्चात् पंचवटी में अड्डा जमाते थे। तदन्तर उस वृक्ष के नीचे चूल्हा खोदकर दाल, बाटी चुरमा इत्यादि बनाते और भगवान का भोग लगाकर पहले श्रीरामकृष्ण देव को दे जाते थे तथा बाद में स्वयं भोजन करते थे। उनमें से कुछ लोग श्रीरामकृष्णदेव के लिए बादाम, पिस्ता, किशमिश, छुहारा, मिश्री, अंगूर, बेदाना, अमरूद, पान इत्यादि लगाकर उनके सम्मुख रखकर उन्हें प्रणाम करते थे क्योंकि ···· खाली हाथ साधु के आश्रम या देवस्थान में नहीं जाना चाहिए, यह बात सभी को विदीत थी; तदर्थ वे कुछ न कुछ लेकर ही उपस्थित होते थे। ··· श्रीरामकृष्णदेव स्वयं तो उन वस्तुओं को खाते ही नहीं थे किन्तु दाल, बाटी इत्यादि बनी हुई वस्तुएँ देवता के भोग लगाने के पश्चात् उन्हें जो दी जाती थीं, उनको प्रसाद मानकर कभी-कभी उनमें से थोड़ा-सा वे ग्रहण कर लेते थे तथा हमें भी देते थे।[11]

मारवाड़ी भक्तों की मिश्री, मेवा, मिठाई आदि "खाने के अधिकारी एक मात्र नरेन्द्रनाथ (स्वामी विवेकानन्दजी) ही थे।"[12] स्वामी अखण्डानन्द ने लिखा है "बड़ा बाजार के मारवाड़ियों के सुस्वादु विविध खाद्य पदार्थों को अकेले स्वामीजी ही सबसे अधिक खाते।"[13] एकबार सिद्धा साधिका गोपाल की माँ को भी श्रीरामकृष्ण ने मारवाड़ी भक्तों द्वारा प्रदत्त सारी मिश्री दी थी।[14]

महापुरुष के पास मुमुक्षु होकर और कितने लोग जाते हैं? संसारी लोग समृद्धि और श्रीवृद्धि के लिए ही लालायित रहते हैं। उनलोगों के लिए मुक्ति से अधिक भुक्ति ही अधिक काम्य है। यह बात साधारण रूप से सभी सम्प्रदाय के लोगों के लिए ही प्रयोजनीय है। किन्तु इसमें व्यतिक्रम भी है। विरल रूप से ही ऐसे लोग हमलोगों की दृष्टि को आकर्षित करते हैं। स्वामी सारदानन्द ने मारवाड़ी भक्तों में 'दो एक' व्यक्तियों के व्यतिक्रम का उल्लेख किया है। स्वामी अखण्डानन्द ने भी ऐसे उज्ज्वल व्यतिक्रम वाले कई मारवाड़ी भक्तों की बात बतायी है, जो श्रीरामकृष्णदेव के पास यथार्थ साधुसंग लाभ और सत् प्रसंग सुनने के उद्देश्य से आया करते थे। 'स्मृति कथा' में (बंगला पुस्तक) में उन्होंने लिखा है—"एक दिन जाने पर

देखता है कि श्रीरामकृष्ण का कमरा सदाबाजार के मारवाड़ियों के समाज से भरा है। कई व्यक्तियों के हाथों में तुलसी की माला है और वे श्रीरामकृष्ण को एकटक होकर देखते-देखते जप कर रहे हैं, और श्रीरामकृष्ण के सामने अनेक प्रकार के उत्कृष्ट मेवा (बिदाम, अंगूर, पिस्ता, बादाम, किशमिश, छुहारा इत्यादि) रखे हैं, जिसे मैंने देखा।

'जो लोग जप कर रहे हैं उनकी दृष्टि अन्यत्र नहीं है। वे सभी एकाग्र चित्त से श्रीरामकृष्ण के मुख की ओर देखते हुए जप करते जा रहे हैं, यह देखकर वे श्रीरामकृष्ण) कहते हैं, श्रीराम, लक्ष्मण और सीता जब वनवास में थे, तब एक पक्षी पानी पी रहा है और 'राम, राम, राम' जप रहा है। यह देखकर श्रीराम लक्ष्मण से कहते हैं, 'लक्ष्मण, देखो-देखो, पानी पी रहा है और कह से कहता है राम, राम, राम।' 'राम' भगवान का नाम है।

वही राम दशरथ का बेटा
वही राम घर-घर में बेटा।
वही राम जगत बनाया,
वही राम सब से न्यारा॥

राजपुताना के भक्तों के साथ श्रीरामकृष्णदेव ने बहुत आनन्द पाया और जिन लोगों को मैंने देखा वे लोग भी भक्त-चूड़ामणि थे।'[१०] यह दुर्भाग्य का विषय है कि इन सब भक्तों के नाम हमलोगों के लिए अज्ञात रह गये।

दक्षिणेश्वर में मारवाड़ी भक्तों के वन भोज (पिकनिक) की बात भी स्वामी अखण्डानन्द ने कही है: 'और एक दिन जाकर देखता हूँ कि राजपुताना के (मारवाड़ी) अनेक भक्त पंचवटी के तले वनभोज का आयोजन कर रहे हैं। बाटी, चुरमा और दाल - यही इन लोगों के वनभोज के खाद्य पदार्थ थे।

"गोबर के बड़े-बड़े गोइठे के ढेर में आग लगाकर उसमें आटे के गोल-गोल पिण्ड को पका देते हैं, इसके बाद जब ऊपर का अंश फट जाता है तब ऊपर के छिलके हटाने से बाटी तयार होती है। घी मिलाकर खाते हैं। और अंगार के नरम हिस्से में काफी मात्रा में घी, चीनी, पिस्ता, बादाम, किशमिश और इलायची आदि मिलाकर सिलाव के मुनाफिक बड़े-बड़े लड्डू बनाते हैं। इसे ही चुरमा कहते हैं। यह बड़ा ही सुस्वादु और इनलोगों का बड़ा प्रिय खाद्य पदार्थ है। इस प्रकार इन लोगों ने पराल में भरकर लड्डू श्रीरामकृष्ण को खाकर दिया। वे उसे पाकर आनन्दित हुए।"

श्रीरामकृष्ण मारवाड़ी भक्तों के सामने जो गीत गाते उनमें तीन का उल्लेख स्वामी आत्मखण्डानन्द ने किया है --

"हीरे से लागि रहो रे भाई
तेरे बनत बनत बनि जाई।"
"दिल राम को नहीं जाना है
तो जो जाना है सो क्या रे!"

और दाशरथि राय का गीत -

"आमार कि फलेर अभाव
तोरा एलि विफल फल जे लये।" [११]

एक बार में ही विषयासक्त मनुष्य के लिए मालिन्यमुक्त होना सहजसाध्य नहीं है। एक बार एक धनी मारवाड़ी ने श्रीरामकृष्णके निकट आकर दुखः से भरकर कहा कि उन्होंने सब कुछ का त्याग कर दिया किन्तु तब भी भगवान की प्राप्ति नहीं होती। श्रीरामकृष्ण ने उनसे कहा—"जैसे तेल का पात्र, तेल बाहर निकाल लेने पर भी पात्र में थोड़ा-थोड़ा तेल रह जाता है और अपनी गन्ध छोड़ता रहता है, उसी प्रकार तुम्हारे भीतर से थोड़ी-थोड़ी विषय की गन्ध निकलती है।" [१२]

दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण के पास मारवाड़ी भक्तों के समागम का प्रसंग हमलोग 'वचनामृत' में तीन दिनों के विवरण में पाते हैं – दिसम्बर १८८२, १ जनवरी, १८८३ तथा २ अक्टूबर, १८८४। और २० अक्टूबर १८८४ को बड़ाबाजार के १२ मल्लिक स्ट्रीट में मारवाड़ी भक्तों के गृह में अन्नकूट के उत्सव में श्रीरामकृष्ण के योगदान का उल्लेख भी पाते हैं।

२ अक्टूबर १८८४ को जो मारवाड़ी भक्तगण दक्षिणेश्वर आये थे वे ही १२ मल्लिक स्ट्रीट के निवासी थे। यह बात स्पष्ट रूप से कही गयी है। किन्तु अन्य दो दिन जो लोग आये थे उनके सम्बन्ध में विशेष कुछ नहीं कहा गया है – केवल पहले दिन के भक्तगण, जो कलकत्ते में व्यवसाय करते थे उस संवाद को छोड़कर। अनुमान किया जा सकता है कि दोनों दिनों के भक्तगण १२ मल्लिक स्ट्रीट के वासिन्दे नहीं थे, वे सब दूसरे लोग थे।

पहले दिन अर्थात् १८८२ के दिसम्बर के बड़ा दिन की छुट्टी में मारवाड़ी भक्तों के जिस एक दल ने आकर श्रीरामकृष्ण को प्रणाम किया उनलोगों को कोई विशेष जिज्ञासा नहीं थी। उनलोगों ने साधारण रूप से श्रीरामकृष्ण से उनलोगों को कुछ उपदेश देने की प्रार्थना की। श्रीरामकृष्णदेव ने भी हँसते हुए उनलोगों की मनोकामना पूर्ण की। उन्होंने सत्य निष्ठा पर जोर दिया और कहा कि साधु को शुद्ध चीज देनी चाहिए। मिथ्या उपाय से प्राप्त की हुई चीजें नहीं देनी चाहिए।[19]

लेकिन १ जनवरी, १८८३ को उपस्थित मारवाड़ी भक्तगण जिज्ञासु होकर ही श्रीरामकृष्ण देव के निकट आये थे। उनलोगों की प्रथम जिज्ञासा ही थी महाराज, उपाय क्या है? श्रीरामकृष्ण ने उनलोगों को दो मार्गों की बात कही विचार-मार्ग और अनुराग अथवा भक्ति का मार्ग। उन लोगों ने साकार और निराकार का अर्थ भी जानना चाहा। श्रीरामकृष्ण ने उन लोगों को अति सुन्दर उपमाओं के द्वारा विषय को प्रांजल रूप से समझा दिया।[20]

पहले ही कहा गया है कि १८८४ ई० के २ अक्टूबर को जो मारवाड़ी भक्तवृन्द दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्णदेव का दर्शन करने आये थे उन लोगों में से ही एक व्यक्ति के १२ मल्लिक स्ट्रीट में स्थित मकान में २० अक्टूबर को अन्नकूट उत्सव में श्रीरामकृष्ण ने शुभ पदार्पण किया था। अफसोस की बात है कि श्री 'म' ने गृहस्वामी मारवाड़ी भक्त के नाम का उल्लेख नहीं किया।

आजकल मल्लिक स्ट्रीट में १२ नम्बर के किसी मकान का आस्तित्व नहीं है। कलकत्ता कॉरपोरेशन (नगर निगम) की पुरानी पंजिका (वही-खाता) से पता चलता है कि १९१० ई० में मल्लिक स्ट्रीट के १२ नम्बर के मकान का नया नम्बर १८ हो गया है। श्रीरामकृष्णके शुभ पदार्पणके समय अर्थात् १८८४ ई० में इस मकान के मालिक थे गुरसीमल और घनश्याम दास। इन दिनों यह मकान तीन मंजिलों का था। बाद में इस मकान को पँच-मंजिला कर दिया गया। १८८४ ई० के १२ नम्बर का मकान, आजकल जिसका नम्बर १८ हो गया है, उस विशाल भवन में इन दिनों अनेक विख्यात व्यापारियों की गद्दी है। भवन के अन्दर बड़ा-सा आङ्गन है। चारों ओर बरामदा है। चौमंजिले के बरामदे से लकड़ी की सीढ़ी से कई धाप ऊपर चढ़ने पर एक प्रशस्त ठाकुर घर पूजा घर है। ठाकुर घर की पश्चिम ओर लकड़ी का सीढ़ीदार सिंहासन है। ऊपर की सीढ़ी पर स्थित छोटे छोटे चाँदी के सिंहासन पर सटे-सटे अष्टधातु के लघु आकार के नांड़ गोपाल (लड्डू खाते हुए बालक कृष्ण) के तीन विग्रह हैं। बीच के अपेक्षाकृत बड़े विग्रह के माथे के मुकुट पर मोरपंख लगा हुआ है। श्री 'म' ने संभवतः इसी विग्रह को 'मयूर मुकुट-धारी' कहा है। इन विग्रहों की सेवा पूजा की सुव्यवस्था आज भी अव्याहत है। अन्नकूट महोत्सव यहीं होता है।

अनुमान किया जा सकता है कि श्री म ने जिन्हें

गृहस्वामी मारवाड़ी भक्त कहकर उल्लेख किया है वे ज्येष्ठ गुरसीमल हैं। ये ही दलबल के साथ २ अक्टूबर को दक्षिणेश्वर गये थे और लगता है कि उसी दिन उनलोगों ने अन्नकूट महोत्सव के लिए श्रीरामकृष्णदेव को आमंत्रित किया था। उस दिन श्रीरामकृष्णदेव ने इन लोगों की प्रशंसा करते हुए कहा था—"अहा! ये सब कैसे भक्त हैं! सब के सब ठाकुरजी के दर्शन करते हैं, स्तुतियाँ पढ़ते हैं और प्रसाद पाते हैं। इस बार इन लोगों ने जिसे पुरोहित रखा है, वह भागवत का पण्डित है।"[२०] श्रीरामकृष्ण की बातों से समझा जा सकता है कि ये लोग नवागत नहीं हैं, बहुत दिनों से ही यातायात करते रहे हैं।

गृहस्वामी गुरसीमल तो यथार्थ भक्त हैं, परमार्थ लाभ के लिए व्याकुल हैं, यह श्रीरामकृष्ण से उनके प्रश्नों से ही भली भाँति जाना जाता है। उन्हें दुःख है कि वे शास्त्र पढ़ते हैं किन्तु धारणा क्यों नहीं होती? विषयों से वैराग्य क्यों नहीं होता? श्रीरामकृष्ण से उनकी एक मात्र प्रार्थना है—"महाराज, ऐसा आशीर्वाद दीजिए कि जिससे संसार से मन हटता जाय।" श्रीरामकृष्ण ने सहास्य पूछा—"कितना है? आठ आने?"[२१]

गुरसीमल श्रीरामकृष्ण को रामचन्द्र का अवतार मानते थे।

गृहस्वामी (गुरसीमल)—महाराज, आप राम हैं।

श्रीरामकृष्ण—यह क्या, नदी की तरंगें हैं, तरंगों की नदी थोड़े ही है?

गृहस्वामी—महात्माओं के ही भीतर राम है। राम को कोई देख तो पाता नहीं, और अब अवतार भी नहीं है।

श्रीरामकृष्ण—(सहास्य) कैसे तुम्हें मालूम हुआ कि अवतार नहीं है? अवतारी पुरुष को सब लोग नहीं पहचान पाते। नारद जब श्रीरामचन्द्रजी के दर्शन करने के लिए गये, तब राम ने खड़े होकर नारद को साष्टांग प्रणाम किया और कहा, 'हमलोग संसारी जीव हैं, आप जैसे साधुओं के आये बिना हम लोग कैसे पवित्र होंगे!' फिर जब सत्यपालन के लिए वन गये, तब देखा, राम के वनवास का संवाद पाकर ऋषिगण आहार तक छोड़कर पड़े हुए थे। फिर भी उनमें से बहुतों को मालूम नहीं था कि राम अवतार हैं।

गृहस्वामी—आप भी वही राम हैं।"[२२]

अन्नकूट महोत्सव के उपलक्ष में जब श्रीरामकृष्ण मल्लिक स्ट्रीट के मारवाड़ी भवन में जाते हैं तब उनके साथ थे बाबूराम महाराज, लाटू महाराज, राम चटर्जी, छोटे गोपाल एवं मास्टर महाशय। श्रीरामकृष्ण ने मयूर मुकुटधारी विग्रह का दर्शन कर प्रणाम किया और निर्माल्य धारण किया। विग्रह का दर्शन कर श्रीरामकृष्ण भाव मुग्ध हो गये। खड़े-खड़े ही समाधि मग्न हो गये। मारवाड़ी भक्तगण सिंहासनस्थ विग्रह को बाहर की छत पर ले गये। वहाँ भोग का आयोजन हुआ था। भोग के उपरान्त आरती और गान हुए। श्रीरामकृष्ण के विग्रह को चमर व्यंजन किया। तदुपरान्त मारवाड़ी भक्तों के अनुरोध पर श्रीरामकृष्ण ने प्रसाद ग्रहण किया।

लौटते समय रास्ते में श्रीरामकृष्ण ने इन लोगों के भाव-भक्ति की प्रशंसा करते हुए कहा—"यथार्थ ही इनमें हिन्दू भाव है। यही सनातन धर्म है।—श्रीठाकुरजी को ले जाते समय, देखा तुमने, उन्हें कैसा आनन्द हो रहा था? आनन्द यह सोचकर कि हम भगवान का सिंहासन उठाये लिये जा रहे हैं, हिन्दू धर्म ही सनातन धर्म है। आजकल जो सब सम्प्रदाय देख रहे हो यह सब उनकी इच्छा से होकर फिर मिट जायेंगे। इसी लिए मैं कहता हूँ, आधुनिक जो सब भक्त हैं, उनके भी चरणों में प्रणाम है। हिन्दू धर्म पहले से है और सदा रहेगा भी।"[२३]

इन मारवाड़ी भक्तों ने श्रीरामकृष्णदेव के पास बाद में आना जाना जारी रखा था। हमलोग देखते हैं कि १८८६ ई० के २० मार्च को होली के उपलक्ष में ये लोग काशीपुर में रोगशय्या ग्रस्त श्रीरामकृष्णदेव को प्रणाम करने आये थे। श्रीरामकृष्ण ने उस समय कहा था—"सब कोई बहुत दिनों के बाद आये हैं।" श्रीरामकृष्णदेव के निकट कुछ देर बैठने के पश्चात् 'जय सच्चिदानन्द,' 'जय सच्चिदानन्द' कहकर उन लोगों ने विदा ली।[25]

---

१. श्रीरामकृष्णचरित — गुरुदास वर्मन, प्रथम भाग, पृ० १६५
२. श्री श्रीरामकृष्ण पूँथि— अक्षय कुमार सेन, ८वाँ सं० पृ० २३३
३. श्रीरामकृष्ण वचनामृत, २। २३। ७
४. श्रीरामकृष्ण वचनामृत, २। २३। ७
५. वही। स्वामी सारदानन्द ने अपनी पुस्तक 'श्री श्रीरामकृष्ण लीला प्रसंग' (दिव्य भाव और नरेन्द्रनाथ, में लिखा है, श्रीरामकृष्ण के द्वारा रुपया लेने से अस्वीकार करने पर लक्ष्मीनारायण ने माँ के नाम से रुपया देना चाहा, किन्तु माँ ने भी वह रुपया लेने से दृढ़ता पूर्वक मनाहीं कर दी।
६. श्री श्रीरामकृष्ण चरित (बंगला) पृ० १५६
७ श्री म-दर्शन (बंगला)—स्वामी नित्यात्मानन्द, १५ वाँ भाग, पृ० ४१८
८ आमार जोवन कथा स्वामी अभेदानन्द पृ० १०२
९ श्री श्रीरामकृष्ण पूँथि, पृ० ६१९
१०. स्वामी अखण्डानन्द--स्वामी अन्नदानन्द पृ० ७४ (बंगला पुस्तक)
११. श्रीरामकृष्ण लीला प्रसंग, गुरुभाव-उत्तरार्द्ध, तृतीय संस्करण पृ० ४८३
१२. वही; पृ० ४८४
१३ स्मृति कथा (बंगला) : पृ० ३७
१४. लीला प्रसंग : पृ० ४८५
१५. स्मृति कथा; पृ० ३५-३६
१६ वही - पृ० ३७
१७. वही— पृ० ३६
१८. श्री श्री रामकृष्ण (उपदेश—सुरेशचन्द्रदत्त, ८वाँ सं० पृ० १३४
१९. वचनामृत १' ८१ पृ० २०९
२० वचनामृत १। २१। ५ पृ० २२१-२२
२१. वचनामृत, २। २३। ६ पृ० ४०५
२२. वही, २। २८। २ पृ० ५१६
२३ वही २। २८। पृ० २१६-१७
२४ वही २। २८। ३ पृ० ५२१-२२
२५. श्रीरामकृष्णेर अंत्यलीला—स्वामी प्रभानन्द, २राखण्ड, पृ० २०६

स्वामी विवेकानन्दजी की दृष्टि में हमारी राष्ट्रीय एकता

-- स्वामी श्रीकृष्णानन्द
रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द सोसाइटी,
जमशेदपुर

बहुत प्रसन्नता की बात है कि भारत सरकार ने स्वामी विवेकानन्दजी की अविर्भाव तिथि को राष्ट्रीय युवा-दिवस के रूप में घोषणा की। हमारा कर्त्तव्य है कि इस दिवस को हम अपने जीवन का आदर्श मानकर आगे बढ़ेंगे। स्वामी विवेकानन्दजी की आविर्भाव तिथि को राष्ट्रीय युवा दिवस के रूप में मानने का एक महान् तात्पर्य है, क्योंकि स्वामीजी थे भारतवर्ष के आदर्श की प्रतिमूर्त्ति। भारतवर्ष की संस्कृति, धर्म और आदर्श इनके जीवन में पूर्णरूप से अभिव्यक्त हुए थे। वे भारतवर्ष को अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करते थे। उनका स्वदेशप्रेम उनके जीवन में हिमालय सदृश प्रकाशित हुआ था। उन्होंने सिंहनाद करते हुए कहा है। "हे वीर, साहस का अवलम्बन करो। गर्व से बोलो कि मैं भारतवासी हूँ, प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है। तुम चिल्लाकर कहो कि अज्ञानी भारतवासी, दरिद्र भारतवासी, ब्राह्मण भारतवासी, चाण्डाल भारतवासी सब मेरे भाई हैं। तुम भी केवल कमर में एकमात्र वस्त्र लपेटकर गर्व से पुकारकर कहो कि भारतवासी मेरा भाई है। भारतवासी मेरे प्राण हैं, भारत की देव देवियाँ मेरे ईश्वर हैं, भारत का समाज मेरे बचपन का झूला, मेरी जवानी की फुलवारी, मेरा पवित्र स्वर्ग और मेरे बुढ़ापे का काशी है। भाई बोलो कि भारत की मिट्टी मेरा सर्वोच्च स्वर्ग है। भारत का कल्याण मेरा कल्याण है और दिन रात कहते रहो: हे गौरीनाथ, हे जगदम्बे, मुझे मनुष्यत्व दो, माँ, मेरी दुर्बलता और कापुरुषता दूर कर दो। माँ मुझे मनुष्य बना दो"।

किसी भी राष्ट्र को यथार्थ रूप से अपने आदर्श पर प्रतिष्ठित होने के लिए उस राष्ट्र के हर नागरिक को अपने जीवन में राष्ट्र के आदर्श का प्रयोग करना चाहिए। जो राष्ट्र अपने आदर्श पर जितना ही प्रतिष्ठित है वह राष्ट्र उतना ही उन्नत होता है। आज देश की परिस्थिति बहुत ही खराब और भयावह है। इस परिस्थिति में स्वामी विवेकानन्दजी का जीवन और उपदेश आज हमारे समक्ष एक ज्योति के रूप में समुद्र तीर पर एक दिगदर्शक के रूप में प्रकाशित हो रहा है। उपयुक्त शिक्षा की प्राप्ति से ही समस्याओं का समाधान हो सकता है। स्वामी विवेकानन्द कहा करते थे। मनुष्य के अन्तर्निहित पूर्णत्व के प्रकाश को शिक्षा कहा जाता है"। वे और भी कहा करते थे: शिक्षा समस्त सामाजिक व्याधियों का प्रतिषेधक है।

अतएव स्वामी विवेकानन्दजी का जीवन, उनकी वाणी और उपदेश हमारा भारतीय आदर्श है। इस आदर्श पर प्रतिष्ठित होकर हम हर भारतवासी अपने जीवन को बनायेंगे। राजनीति और सामरिक विधि हमारे भारतीय जीवन में काफी प्रभाव शील हो नहीं सकता क्योंकि भारत का एकमात्र मूलधन है—आध्यात्मिकता। सारे विश्व में भारत को कुछ देना है तो वह है एकमात्र आध्यात्मिकता। स्वामी विवेकानन्दजी ने कहा:

"ऐसा एक समय आयेगा जब भारत से ही आध्यात्मिक स्रोत सारे विश्व में बहेगा और सारा विश्व नत भाव ग्रहण कर अपने जीवन को शान्तिपूर्ण बनायेगा। अतएव हम भारतीय आध्यात्मिकता को छोड़कर दूसरी किसी वस्तु पर ध्यान देंगे तो हमारा जीवन काफी दुःखपूर्ण हो जाएगा।' इसलिए स्वामी विवेकानन्दजी ने कहा :

"राजनीति और सामाजिक शासन हमारे भारतीय जीवन का लक्ष्य कभी भी हो नहीं सकता"।

राजनीति और सामाजिक शासन केवल जन जीवन को सन्मार्ग पर ले जाने के लिए उपाय स्वरूप है। भारतीय जीवन को सम्पूर्ण रूप से आध्यात्मिकता के द्वारा परिपूर्ण होना ही होगा। स्वामी विवेकानन्द के विचार के अनुसार त्याग और सेवा के द्वारा हम सभी को अपना जीवन धारण करना होगा। त्याग ही धर्म है और सेवा ही शिक्षा। सम्पूर्ण मानव बनने के लिए शिक्षा और धर्म दोनों की आवश्यकता होती है। बिना शिक्षित हुए कोई धार्मिक नहीं बन सकता। स्वामीजी ने कहा :

"मैं धर्म को शिक्षा की सारवस्तु समझता हूँ"। अतएव मुझे पहले शिक्षित बनना होगा। उसके बाद ही धार्मिक। स्वामीजी ने और भी कहा : पहले तुम मनुष्य बनो उसके बाद मनुष्य बनाओ।

स्वामी विवेकानन्द थे एक संन्यासी। भारतीय संन्यासी को संसार त्याग कर किसी पर्वत में जाकर भगवत्चिन्तन करनी चाहिए। स्वामी विवेकानन्द ने सचमुच संसार त्याग दिया था। लेकिन किसी पर्वत पर जाकर उन्होंने अपना जीवन नहीं बिताया। उन्होंने इस संसार का ही भगवान को रूप में देखा है। उनके जीवन की सारी साधनाएँ जीव की सेवा में ही परिवर्तित हुई थी। भारतवर्ष का आदर्श त्याग और सेवा स्वामी विवेकानन्द के रूप में ही इस युग में प्रकाशित हुआ था। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा।

"यदि आप भारत को समझना चाहते हैं, तो विवेकानन्द का अध्ययन कीजिए। उनमें सब कुछ विधेयात्मक है, सब कुछ भावात्मक है। निषेधात्मक या अभावात्मक कुछ भी नहीं"।

आज इस पुण्य क्षण में हम स्वामी विवेकानन्द जी की कुछ वाणियों का स्मरण करेंगे और इन वाणियों को आज से अपने जीवन का आदर्श बना लेंगे।

पहली वाणी है : त्याग और सेवा हमारे जातीय आदर्श हैं।

दूसरी वाणी है : आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च। इसका अर्थ है कि अपनी मुक्ति के लिए ऐसे कर्म करो जो जगत का हित-साधन करे।

तीसरी वाणी है : उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत।

उठो जागो और तब तक नहीं रुको, जब तक लक्ष्य प्राप्त न हो जाय। स्वामीजी कहते थे : इसी वाणी को सुनाने के लिए मैंने जन्म लिया है।

इन सारी वाणियों को जीवन में उतारने के लिए हमें किस प्रकार के मार्ग का अवलम्बन करना चाहिए ? स्वामी विवेकानन्द जी की समाज चेतना में तीनों वस्तुएँ स्थान पा चुकी थीं। साधारण व्यक्ति के जीवन में शिक्षा, जीवन में सुख और मनुष्य जीवन का धर्म। वे कहा करते थे कि तुम पढ़े हो : मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्य देवो भव। लेकिन तुम्हें एक नयी वाणी मैं सुनाना चाहता हूँ कि आज से पुकारकर कहो मूर्ख देवो भव, दरिद्र देवो भव, चाण्डाल देवो भव।' मूर्ख को शिक्षा देकर उनको शिक्षित और सुखी बनाना है। दरिद्र को अन्न वस्त्र और शिक्षा देकर उनको सुखी बनाना है। चण्डाल को शिक्षा और ब्राह्मणत्व देकर उनको भी सुखी बनाना है। इन वाणियों को अपने व्यावहारिक क्षेत्र में कैसे प्रयोग करें ? प्रत्येक मनुष्य

के अन्दर में दो शक्तियाँ रहती हैं। एक है परा शक्ति, दूसरी है अपरा शक्ति। शास्त्र में कहा गया है :

"द्वे विद्ये वेदितव्ये परा च अपरा चैव"

इस मनुष्य जीवन में दो विद्याओं की जानकारी करनी चाहिए। एक है परा विद्या और दूसरी है अपरा विद्या। मनुष्य के जीवन में अपरा विद्या के परिपूर्ण रूप से प्रकाशित होने से मनुष्य शिक्षित तथा सुखी एवं परा विद्या के प्रकाशित होने से मनुष्य धार्मिक बन जाता है। इन दो विद्याओं को प्राप्त करने के लिए पहले चाहिए दो चीजें। एक स्वस्थ शरीर दूसरा है सत् चरित्र। स्वस्थ शरीर के विना हम किसी विषय में सफलता की प्राप्ति नहीं कर सकेंगे। स्वामी विवेकानन्द युवाशक्ति से तीन बातों की अपेक्षा करते थे। पहला बल। वे समस्त बुराइयों की जड़ दुर्बलता में देखते थे। दूसरा है ईर्ष्या का अभाव और तीसरी बात है संगठित होकर देश की सेवा के लिए आत्म समर्पण। वे कहा करते थे कि : "तुम गीतापाठ की अपेक्षा फुटबाल खेलकर ही स्वर्ग के नजदीक पहुँचोगे।" इसका अर्थ यह नहीं है कि तुम केवल फुटबाल ही खेलते रहो, गीता पढ़ने की कोई आवश्यकता नहीं है। उनके कहने का अभिप्राय यह है कि तुम पहले फुटबाल खेलकर स्वस्थ शरीर बना लो उसके बाद ही गीता पढ़ो। तब गीता की वाणी यथार्थ रूप से समझ में आएगी। दूसरा है चरित्र निर्माण। यह कोई चीज नहीं है कि इसको रुपया देकर खरीदा जाय। वह एक किस्म की शक्ति है जो हर मनुष्य के अन्दर में रहती हैं। इसको प्रकाशित करने के लिए मुझे कई गुणों को प्राप्त करना चाहिए। इसी से उन गुणों के सम्बन्ध में बताता हूँ।

१ जीवन में आदर्श चुन लेना।
२ सत्यरक्षा, श्रद्धा और निष्ठा प्राप्त करना।
३. ब्रह्मचर्य और पवित्रता की रक्षा करना।
४. अध्यवसाय एवं आत्मविश्वास प्राप्त करना।
५ निःस्वर्थ पर बनना।
६ आज्ञाकारिता प्राप्त करना।

१ **आदर्श :** मनुष्य के रूप में अपने को प्रतिष्ठित करने के लिए पहले जीवन का आदर्श चुन लेना चाहिए। अपनी रुचि और सामर्थ्य के अनुसार किसी भी महापुरुष के जीवन को अपने जीवन का आदर्श मान लें एवं उसी पर ध्यान दें तो हमारा जीवन सचमुच एक आदर्श जीवन बन जाएगा। आदर्श के विना कोई मनुष्य, बड़ा हो नहीं सकता। शास्त्र में कहा गया है कि : 'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी। जिसकी जैसी भावना होती है उसकी सिद्धि भी वैसी होती है। स्वामी विवेकानन्दजी ने कहा कि तुम जैसी चिन्तन करोगे वैसा ही बन जाओगे। अतएव जीवन में पहले आदर्श चुन लेना चाहिए।

२. **सत्य-रक्षा, श्रद्धा और निष्ठा :** सत्यरक्षा करना जीवन एवं चरित्र गठन का एक महामूल्य तथा अपरिहार्य गुण है। वह चरित्र निर्माण के लिए मेरुदण्ड स्वरूप है। इस गुण को छोड़कर कोई भी जीवन को सुमार्ग पर प्रतिष्ठित कर नहीं सकता। इसके बाद चाहिए श्रद्धा। किसी विषय में ज्ञान प्राप्त करने के लिए उस विषय पर पूरी श्रद्धा होनी चाहिए। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है : श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्। निष्ठा है किसी विषय में लगातार प्रयास। सफलता की प्राप्ति के लिए निष्ठा की आवश्यकता बहुत है।

३. **ब्रह्मचर्य और पवित्रता :** जीवन को सुखी बनाने के लिए ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। ज्ञान प्राप्त करने के लिए मेधानाड़ी की जरूरत होती है। मेधानाड़ी आती है ब्रह्मचर्यरक्षा से अतएव जीवन में ब्रह्मचर्य की रक्षा आवश्यक है। कम से कम तेरह से तीस साल तक ब्रह्मचर्य रक्षा करनी चाहिए। इसके बाद पवित्रता। श्रद्धा और ज्ञान के द्वारा मन और मुँह एक बनाना ही पवित्रता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि कुभाव से एकजुट होकर दूसरे

व्यक्ति का अनिष्ट करें। सत् भाव, सत् चिन्ता, सत् वचन और सत् कर्म इत्यादि द्वारा मन और मुँह एक करना ही पवित्रता है।

४. अध्यवसाय और आत्मविश्वास : जीवन में बहुती बाधाएँ आती हैं। अध्यवसाय के सहारे इन बाधाओं का अतिक्रमण करना ही है। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार अध्यवसाय के समक्ष कोई भी बाधा शक्तिशाली हो ही नहीं सकती। स्वामी-जी के अनुसार उद्यमशील व्यक्ति कहते हैं : "मैं एक चुल्लू से सागर पी ले सकता हूँ। मेरी इच्छा-मात्र से पर्वत चूर्ण विचूर्ण हो जाएगा।" इस प्रकार की इच्छाशक्ति लेकर मन को शक्तिशाली करना है। इसके बाद आत्मविश्वास। यह एक ऐसी चीज है जो जीवन की उन्नति का पहला सोपान है। आत्मविश्वास बिना कोई महापुरुष जीवन में न खड़ा हुआ है और न कोई खड़ा हो सकता है। स्वामी विवेकानन्दजी कहा करते थे कि तुम सबने सुना है कि पुराना धर्म कहता है कि जो ईश्वर में विश्वास नहीं करता वह नास्तिक है। लेकिन आज मैं कहता हूँ कि जो अपने पर विश्वास नहीं करता है वह नास्तिक है। अपने पर पहले विश्वास करना ही धर्म का लक्षण है।

५. निःस्वार्थपरता : समाज में निःस्वार्थरूप से काम किए बिना कोई भी अपने जीवन को सुखी नहीं बना सकता। दूसरे व्यक्ति की सेवा ही है परम धर्म। वे और भी कहा करते थे कि परोपकार ही धर्म है और परपीड़न ही पाप है। जो अपनी मुक्ति के लिए काम करता है वह है बद्ध और जो दूसरों के सुख के लिए काम करता है वह है मुक्त, जो सेवामूलक काम में लगे रहे हैं वे हैं सचमुच मुक्त व्यक्ति।

६. आज्ञाकारिता : किसी विषय में ज्ञान प्राप्त करने के लिए मन की सारी शक्तियों को एकत्रित करना चाहिए। इस प्रकार की साधना गुरु बिना नहीं हो सकती है। आध्यात्मिक जगत में गुरु से और पार्थिव जगत में विशेषज्ञ से ही इस साधना का तत्व ज्ञात कर जीवन को आगे बढ़ाना है। अतएव मनुष्य जीवन में इन छः गुणों को प्राप्त करना चाहिए एवं मनुष्य जन्म को सार्थक बनाना चाहिए।

अन्तर्राष्ट्रीय युवा वर्ष के उपलक्ष में भारत सरकार ने एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कदम उठाया। स्वामी विवेकानन्द के आविर्भाव दिन १२ जनवरी को प्रति वर्ष राष्ट्रीय युवा दिवस के रूप में समस्त राष्ट्र में बड़े पैमाने पर मनाने का निर्देश है। इसका तात्पर्य यह है कि भारत सरकार ने अनुभव किया कि स्वामी विवेकानन्द का दर्शन तथा उनका आध्यात्मिक जीवन एवं स्वदेश प्रेम का आदर्श जिसे उन्होंने स्वयं पालन कर अपने जीवन को भारतीय आदर्श स्वरूप प्रमाण के रूप में उन्होंने प्रतिष्ठित किया। उनके द्वारा दिये हुए सारे उपदेश बहुत शक्तिदायी एवं फल प्रसू हैं। उनकी सारी वाणियाँ युव समाज के लिए काफी कल्याणकारी हैं। "स्वामी विवेकानन्दजी के व्याख्यानों को पढ़ने के बाद मेरी देशभक्ति सौ गुणी बढ़ गयी"। यह है हमारी स्वाधीनता के जनक महात्मा गाँधीजी का भाषण। स्वाधीनता संग्रामी श्री सुभाषचन्द्र बोस ने कहा : स्वामी विवेकानन्द की पुस्तकों को पढ़कर ही मैंने अपने जीवन को देश के लिए समर्पित कर दिया। आज यदि वे होते तो मैं उनके चरणतले रहता। आज भारतवर्ष में करीब ३९% युवा हैं। और कल ये सभी युवा ही देश के कर्मकर्त्ता के रूप में निकल आयेगें। तो इस उम्र से ही सारे युवसमाज को राष्ट्रीय एकता को यथार्थ रूप से समझ लेना चाहिए।

स्वामी विवेकानन्दजी की वाणी स्मरण कर भारतवर्ष में एकता लानी है। वे कहा करते थे। "हे भारत भूलना नहीं कि तुम्हारी स्त्रियों का आदर्श हैं सीता, सावित्री, दमयन्ती। भूलना नहीं कि तुम्हारे उपास्य देवता सर्वत्यागी उमानाथ शंकर हैं, भूलना नहीं कि तुम्हारा विवाह, तुम्हारा धन

और तुम्हारा जीवन इन्द्रिय सुख के लिए नहीं है, भूलना नहीं कि तुम जन्म से ही "माता" के लिए बलिस्वरूप रखे गये हो, भूलना नहीं कि तुम्हारा समाज उस महामाया की छायामात्र है। भूलना नही कि नीच, अज्ञानी, दरिद्र, चमार और मेहतर तुम्हारे रक्तमांस हैं, तुम्हारे ही भाई हैं।"

अतएव, हम सब भारतवासी इस मन्त्र को अपने जीवन का आदर्श मान कर उसका ध्यान करें। उपयुक्त शिक्षित होकर त्याग और सेवा की भावना द्वारा जीवन को सुखी बनायें और अपने जातीय आदर्श को यथार्थ रूप से सम्मान प्रदान करें। भारतवर्ष का हर नागरिक इस आदर्श पर प्रतिष्ठित हो जाय तो हमारे बीच में जो भेद है वह सब दूर हो जायेगा और,हम सब सम्पूर्ण मानव बनकर अपने को देश और देश की सेवा में समर्पित कर सकेगें। जयतु स्वामी विवेकानन्द !

बाल जगत

भंगी-मोची तुम्हारे भाई

बचपन में स्वामी विवेकानन्द को उनके परिवार के लोग बिले कह कर पुकारते थे, उनके पिता एक प्रतिष्ठित वकील थे। अतः उनके घर में सदा मुवक्किलों का आना-जाना लगा रहता था। उन दिनों प्रत्येक गृहागत को तम्बाकू देने का रिवाज था। बालक बिले ने देखा कि उनके बैठकखाने में छोटे-बड़े ढेर सारे हुक्के झूल रहे हैं। बिले के मन में प्रश्न उठा, 'इतने सारे हुक्के क्यों रखे हैं।" परिवार के एक व्यक्ति ने उन्हें बताया कि ब्राह्मण, कायस्थ तथा अन्य जाति के लोगों के लिए अलग-अलग हुक्के रखे गए हैं। यदि कोई अपने से नीच जाति के लिए रखे हुक्के से तम्बाकू पी ले, तो उसे जाति च्युत होना पड़ेगा।

उक्त घटना के कई दिन पश्चात् विवेकानन्द के पिता विश्वनाथ दत्ता ने बैठक कक्ष में प्रवेश कर देखा कि उनके पुत्र बिले एक – एककर प्रत्येक हुक्के के पास जा रहे हैं और तम्बाकू पीने का अभिनय करते हुए मुंह लगाकर हुक्कों से कश लगा रहे हैं। उन्होंने पूछा, "बिले तुम यह क्या कर रहे हो।" बिले ने जवाब दिया, "पिताजी मैं इस बात की परीक्षा कर रहा हूँ कि मेरी जाति जा रही है या नहीं।"

स्वामी विवेकानन्द तब नये-नये संन्यासी बने थे। तब वे भारत के विभिन्न तीर्थस्थानों की परिक्रमा कर रहे थे। आगरा से आगे वे वृन्दावन की ओर यात्रा कर रहे थे। पास में एक भी पैसा नहीं था। चलते-चलते काफी श्रान्त हो गये थे, बहुत भूख भी लगी थी। वृन्दावन के निकट पहुँचकर उन्होंने देखा कि एक व्यक्ति अपार आनन्द के साथ तम्बाकू पी रहा है। स्वामीजी को तम्बाकू पीने की आदत थी। उस आदमी को तम्बाकू पीते देख कर उन्हें भी तम्बाकू पीने की इच्छा हुई। उन्होंने उस आदमी से कहा, "जरा अपना हुक्का तो मुझे दो, भाई ?"

यह सुनकर उस आदमी को बड़ा संकोच हुआ और उसने कहा, "महाराज मैं भंगी हूँ।" निराश हो कर स्वामीजी चले गये। कुछ दूर, जाने के पश्चात् सोचा, "मैं एक संन्यासी हूँ। मेरी तो जाति ही नहीं है। तब भंगी का नाम सुनते ही मैं इस तरह चला क्यों आया।"

वे पुनः लौट गये। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि वह आदमी उसी तरह बैठा हुआ है। स्वामीजी ने पुनराग्रह करते हुए कहा, "भाई, कृपया मेरे लिए भी तम्बाकू सजा दो।" उसे ऐसा करने में

हिचकिचाहट हो रही थी। अन्ततः बहुत समझा-बुझाकर वे उसके द्वारा सजाये तम्बाकू पीकर ही वृन्दावन की ओर प्रस्थित हुए।

मैं यहाँ एक और घटना का जिक्र कर रहा हूँ। समग्र विश्व को अपनी प्रतिभा से अभिभूत कर स्वामीजी स्वदेश लौट रहे थे। स्वामीजी जैसे महामानव के देश को देखने के लिए उनके साथ कई अंग्रेज भी आ रहे थे।

एडन पहुँच कर जहाज रुका। जहाज खुलने में घण्टों बाकी थे। इस बीच वे शहर को देखकर आ सकते थे। स्वामीजी और उनके साथी शहर देखने चले। समुद्र से करीब तीन मील की दूरी पर एक जलाशय था। वे उस जलाशय को देखने के लिए जा रहे थे। कुछ दूर जाने के बाद स्वामीजी सबसे आगे निकल गये जलाशय के समीप पहुँच कर उनके साथियों ने स्वामीजी को खोजा। अन्त में देखा गया कि एक गरीब व्यक्ति के पास बैठकर वे आनन्द से बातें कर रहे हैं। वह आदमी था एक सामान्य भारतीय पानवाला।

स्वामीजी ने एक बार भी इस भावना को मन में आने नहीं दिया कि एक अशिक्षित, गरीब व्यक्ति के साथ बातें करते देख लोग उनके बारे में क्या सोचेंगे।

अमरीका से लौटने के पश्चात् सारे भारतवर्ष ने स्वामीजी को राज-सम्मान दिया। भारत के सभी बड़े-बड़े स्थानों से प्रतिष्ठित व्यक्तियों, ने उनको निमन्त्रित किया। जब वे अलवर गये तो वहाँ उत्सव का दृश्य उपस्थित हो गया। सभी धनाढ्य व्यक्तियों ने उन्हें भोजन करने का निमंत्रण दिया। परन्तु स्वामीजी ने एक निर्धन वृद्धा के घर भोजन करने का निश्चय किया। उन्होंने संदेश भिजवाया कि उन्हें मोटी-मोटी रोटियाँ खाने की तीव्र इच्छा हुई है।

इस घटना के पीछे एक वृतान्त है। अमरीका जाने के पहले स्वामीजी जब अलवर आये थे तो उसी वृद्धा ने सप्रेम, सश्रद्ध उनको भोजन करवाया था। तब उनकी ख्याति का साम्राज्य उतना विस्तृत नहीं हुआ था।

स्वामीजी को अपने अतिथि के रूप में पाकर बुढ़िया फूली न समाती थी। उसने जिस आनन्द के साथ उनको भोजन कराया, वह वर्णनातीत है। उन दिनों बेलुड़ मठ का निर्माण-कार्य चल रहा था - कई सन्थाल महिलाएँ और पुरुष मिट्टी काटने का कार्य कर रहे थे प्रायः स्वामीजी उनके पास जाकर उनके सुख-दुख की चर्चा करते और घंटों उनसे बातें किया करते थे। उन सन्थालों में से एक का नाम था केष्टा। स्वामीजी का वह प्रिय पात्र था। केष्टा प्रायः उनसे कहा करता, "हे स्वामीजी तुम हमारे काम के समय मत आया करो। तुम्हारे साथ बातें करने लगता हूँ, और काम बंद हो जाता है। बाद में बूढ़ा बाबा आकर हमें डाँटता है।" स्वामीजी की आँखें भर आती थीं। वे जवाब देते थे, "नहीं' बूढ़ा बाबा तुम लोगों को नहीं डाँटेगा। तुम लोगों की बातें मुझे बड़ी अच्छी लगती है। "एक दिन उन्होंने केष्टा से आग्रह किया, "तुम एक बार हमारे यहाँ खाओगे?' केष्टा ने कहा, "हम अब आप के द्वारा स्पर्श किया भोजन नहीं ग्रहण करते हैं। विवाह के पश्चात, आप लोगों द्वारा स्पर्श किया नमक खाने से हमें जातिच्युत होना पड़ेगा।" स्वामीजी ने कहा, "नमक मत खाना। बिना नमक के ही मैं तुम लोगों के लिए भोजन तैयार करवा दूँगा।" तत्पश्चात् स्वामीजी ने एक दिन पूड़ी, सब्जी और विविध प्रकार की मिठाइयाँ बनवाकर उन संथालों को खिलाया। उनके समीप बैठकर उनका खाना देखना उन्हें बहुत अच्छा लग रहा था। भोजन ग्रहण करने के पश्चात् प्रसन्न मुद्रा में संथालों ने कहा, "हे स्वामी आपने ऐसा भोजन कहाँ से पाया, हमलोगों ने ऐसा भोजन कभी नहीं किया था।" एक दिन स्वामीजी ने सन्थालों के निकट आकर कभी ऐसा गप्प छेड़ा कि सारा काम ठप्प हो गया, इसी बीच कलकत्ता से कई प्रख्यात भद्रपुरुष स्वामीजी से मिलने मठ में आते। स्वामीजी को कई बार खबर भिजवायी गयी परन्तु उन नेक, संथाल को छोड़कर वे उन तथाकथित संभ्रात व्यक्तियों से मिलने नहीं गये।" स्वामीजी के हृदय में निम्न वर्गों के प्रति कितना प्रेम था, यह उपर्युक्त घटनाओं से प्रकट होता है।

स्वामी अद्भुतानन्द की जीवन-कथा

चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय

अनुवादक—स्वामी विदेहात्मानन्द

लाटू महाराज ने बताया था—"राय बाबू के देह त्यागने के दो-तीन महीने बाद (२८ मार्च १८९९ ई०)

योगीन भाई ने शरीर छोड़ा। देहान्त के समय योगीन भाई को निर्वाण की इच्छा व्यक्त करते देख गिरीश बाबू ने उनसे कहा, 'देख योगा ! उनसे वह सब न माँगना। तू वह आकांक्षा छोड़ दे तो तेरा कष्ट कम हो जाएगा।' गिरीश बाबू को योगीन भाई खूब मानता था, अतः वह बोला, 'अच्छा जी० सी०! तुम्हारी ही बात मानूंगा, परन्तु क्या माँगू यह तुम्हें बता देना होगा।' जानते हो गिरीश बाबू ने तब क्या कहा? बोले, 'अरे, तुम लोग तो ठाकुर की सन्तान हो। तुम लोगों को वे निर्वाण नहीं देंगे, दे भी नहीं सकते। तुम लोगों को यदि वे निर्वाण दे दें, तो फिर उनकी लीला कैसे चलेगी? तुम लोग उनके अन्तरंग हो। वे जब जब आएंगे, तब तब तुम लोगों को भी आना होगा; इसीलिए कहता हूँ कि वह सब माँगना-वांगना छोड़कर कहो रामकृष्ण को चाहता हूँ, रामकृष्ण को चाहता हूँ, रामकृष्ण को चाहता हूँ।' गिरीश बाबू कहते जाते थे और योगीन भाई हामी भरता जाता था। उसी समय किसी ने पूछा, 'क्या देखते हो भाई?' इस पर योगीन भाई ने कुछ कहा। तब स्वामीजी नाराज होकर उन प्रश्नकर्ता से बोले, 'तुम लोग भी अच्छे आदमी हो! उसे थोड़ा शान्ति से रहने दे न, जी० सी० के समान उसे उनका नाम सुना न।' नाम सुनते सुनते योगीन भाई ने शरीर छोड़ दिया। तत्पश्चात् स्वामीजी ने अपने हाथों उसके सिर पर पगड़ी बांध दी और उसे भजन सुनाने लगे।"

योगानन्द स्वामी के महाप्रस्थान के बाद लाटू महाराज ने बेलूड़ मठ में आकर वहाँ एक-डेढ़ महीने निवास किया था। उसी समय उन्होंने देव-भोग के नाग महाशय को मठ में देखा था। उन्होंने बताया था—"नाग महाशय नया मठ देखने को आये। स्वामीजी को देखकर वे बोले, 'आज साक्षात् शिव दर्शन हुआ।' उस दिन हम सब की ओर उन्मुख होकर स्वामीजी ने कहा था, 'अरे! ये गृहस्थ तो हैं, पर त्याग-वैराग्य और इन्द्रियजय में ये बहुत से संन्यासीगण को पीछे छोड़ गये हैं। इनका कैसा भाव है देखा न? जगत् का अस्तित्व है अथवा नहीं, इतना भी बोध नहीं; सर्वदा तन्मय ही रहा करते हैं।' फिर एक बार माताजी के घर (१८९५ ई० में जब वे सरकार-बाड़ी लेन के गुदामवाला मकान में रहती थीं) पर भी मैंने नाग महाशय को देखा था। उस दिन भी उनमें वही भाव था। ऐसी विनय, ऐसा आर्तभाव मुझे बहुत कम लोगों में देखने को मिला है।

"विवेकानन्द भाई जब मठ से चला गया, तब मेरा भी मन वहाँ नहीं लगा और मैं वहाँ से चला आया।"

कहाँ चले आये, महाराज?"

क्यों? 'बसुमती' के उपेन ठाकुर के पास चला गया। उपेन ठाकुर ने मुझे अपने छापाखाने में रहने को कहा और मैं वहीं ठहर गया।

इतनी जगह रहते, आखिरकार और छापा-खाने में जाकर रहे ?

—क्यों ? उसमें क्या है ? छापाखाने में तो मैं सुखपूर्वक रात बिता लेता था। कागज के गट्ठर पर कम्बल बिछाकर सो रहता था।

—छापाखाने में क्या शोर-गुल नहीं होता था, महाराज ?

—थोड़ा बहुत होता था, पर उससे मेरे ध्यान में कोई बाधा नहीं पड़ती थी। वहाँ के दो-चार जन मेरी बड़ी सेवा करते थे. उपेन ठाकुर भी मेरे प्रति बड़ा स्नेह भाव रखता था; इसीलिए तो वहाँ रह गया।

—छापाखाने के लोगों के साथ मेलजोल रखते थे, इसीलिए तो आपके पास कोई भला आदमी नहीं जाता था। ···· के मुख से मैंने सुना कि आप तब अधम लोगों के साथ मिलाजुला करते थे !

—हाँ ! मिलता था। परन्तु वे लोग अधम हैं, यह बात उसे कैसे मालूम हुई ?

महाराज ! यह बात तो सभी जानते हैं ; जो लोग चरित्रहीन हैं, नसेड़ी हैं, जुआड़ी हैं उन्हीं को तो सब अधम कहते हैं। आप उन लोगों के साथ मेलजोल क्यों रखते थे ?

—परन्तु वे लोग कपटी तो नहीं थे।

लाटू महाराज की ये बातें सुनकर प्रश्न करने-वाले भक्त बड़े ही आश्चर्यचकित रह गये थे। वे अपनी नोटबुक में बहुत सी टिप्पणियाँ लिख गये हैं, हम उनमें से केवल निम्नलिखित उद्धृत करते हैं।

—'लाटू महाराज लोगों को दो श्रेणी में विभक्त करते थे—कपटी और निष्कपट। सरल निष्कपट व्यक्ति को वे अपना बना लेते थे, परन्तु कपटयुक्त शिक्षित व्यक्ति को वे दूर ही रखते थे।"

उनके 'वसुमती' प्रेस में निवासकाल के दौरान निम्नलिखित घटना हुई थी।—"एक दिन देर रात गये वे चिल्लाकर कहने लगे, 'चुप रह साला !

[illegible] ! ये लोग [illegible] के लायक हैं। ये लोग [illegible] नहीं सकते।' [illegible] रात, उन्होंने सुबह [illegible] के [illegible] के [illegible] पास आ पहुँचे। [illegible] के [illegible] के [illegible] की ओर [illegible] है। [illegible] एक कप चीनी [illegible] के समय आप किस पर नाराज हो रहे थे, वहाँ तो कोई भी नहीं दीख पड़ता।' लाटू महाराज ने उस प्रश्न का कुछ भी उत्तर नहीं दिया।' यह घटना हमें 'वसुमती' के अध्यक्षपद पद पर उनके रहने की याद दिलाती है।

इस घटना को सुनकर एक विज्ञ श्रोता ने निम्नलिखित मत दिया था "जानते हैं ? यही घटना प्रत्येक साधक के जीवन में दिखायी देती है। बुद्धदेव जब गहन साधना के द्वारा [illegible] विचलित करने के लिए 'मार' ने कई तरह [illegible] के प्रलोभन दिखाये थे। परन्तु बुद्धदेव उससे विचलित नहीं हुए। इन प्रलोभनों के जाल में लोग अधिक फँस सकते हैं, वे सामान्य को सहज-सिद्धि प्राप्त करते हैं। सीता ने, ऋषि मुनियों की तपस्या में विघ्न डालने के लिए उर्वशी, मेनका, रम्भा, वृताची आदि अप्सराएँ कितना प्रयत्न करती थीं ! उन्हें देखकर साधकगण यदि भूले में आ जाते, तो उन पर हँसते रहते, और यदि नहीं आते तो उन पर उन्हें देखकर काँपने लगते। हमारे पुराणों में भी ये सब बातें हैं।"

लाटू महाराज छापाखाने के कर्मचारियों को खूब खिलाया करते थे। वसुमती के पूर्व मैनेजर ने बताया था "उबले चने तथा मकरकन्द, चम, मोहनभोग आदि चीजें वे अपने हाथों से बनाया करते थे। कभी कभी वे दुकान से होम की कचौड़ियाँ मँगवाते थे। और सब अपने लोगों के साथ दिन का समय वे गंगा के तट पर बिताते थे। वहाँ पर उन्हें जो कोई दवा करके जो कुछ दे देता, उसी

से वे अपनी उस दिन की व्यवस्था कर लेते। उनकी स्वयं की आवश्यकताएँ कुछ अधिक न थीं—दिन भर में बस दो-तीन कप चाय और थोड़े से उबले हुए चने; बड़ी आग्रह-अनुरोध करने पर कभी-कभार वे एकाध हींग की कचौड़ी ले लेते थे, परन्तु बाद के दिनों में वे उसे भी अस्वीकार करते हुए कहते, 'वह सब भोगियों का खाद्य है, संन्यासी को नहीं खाना चाहिए।' हम लोगों में से कोई कोई उनके सामने बड़ा बकवाद किया करता था। धर्म के बारे में वे प्रायः बोलते ही नहीं थे। उस विषय में कुछ पूछने पर वे कहते, 'पहले मेहनत मजूरी करके माँ-बाप की सहायता करो; उनके मुख पर हँसी लाओ, उसके बाद धर्म करने आना। कलिकाल में माँ-बाप की सेवा करना ही धर्म है।' वे और भी कहते, माँ-बाप को रुलाकर नहीं आना चाहिए। उनकी अनुमति लेकर धर्मसाधन करना चाहिए। यही देखो न शंकराचार्य ने माँ की अनुमति पाकर ही संन्यास-धर्म स्वीकार किया था और महाप्रभु ने माँ को सन्तुष्ट करने के लिए विवाह तक कर लिया था।' इसी प्रकार के दृष्टान्त देकर वे हमें समझाया करते थे। एक दिन हममें से किसी ने जब उनसे दीक्षा लेने की इच्छा व्यक्त की, तो लाटू महाराज उसको बोले, 'वह सब आचार्य का काम है। मैं तो आचार्य नहीं हूँ। जाओ न स्वामीजी के पास, उचित लगा तो वे तुम्हें दीक्षा दे देंगे।' इसी प्रकार वे हमें भुलावा देकर रखते थे।"

१८९९ ई० के अन्त में वसुमती प्रेस विडन उद्यान के पूर्व की ओर स्थानान्तरित होकर ग्रे स्ट्रीट पर चला गया। ग्रे स्ट्रीट के भवन में लाटू महाराज नहीं रहे, यह बात हमें वसुमती छापाखाने के लोगों से ज्ञात हुई।

हम जहाँ तक तथ्य संग्रह कर सके हैं, उसके आधार पर कहा जा सकता है कि लाटू महाराज रामकृष्ण मिशन की साप्ताहिक सभा में जाया करते थे। एक दिन जब साप्ताहिक सभा में वेद पर व्याख्यान देने के लिए श्रीयुत शरत्चन्द्र चक्रवर्ती बलराम मन्दिर में आये थे, तो लाटू महाराज ने उनसे कहा -"ओ शरट् बाबू! आपको वेद पर लेक्चर देने का बहुत मौका मिलेगा, परन्तु ऐसे महापुरुष के चले जाने पर अफसोस करना पड़ेगा। आज ही देव भोग चले जाइए। वहाँ नाग महाशय बड़े अस्वस्थ हैं। जाकर उनकी सेवा करके धन्य हो जाइए।" लाटू महाराज की यह बात सुनकर शरत् चक्रवर्ती उसी रात को देवभोग चले गये। इसके ठीक एक माह बाद नाग महाशय का देहत्याग हुआ। इस घटना के प्रसंग में शरत् बाबू ने हम लोगों को बताया था, "लाटू महाराज में भविष्य को जान लेने की क्षमता थी। वे समझ गये थे कि नाग महाशय की बीमारी अब ठीक न होगी और इसीलिए उन्होंने मुझे शीघ्रतापूर्वक वहाँ जाने को कहा।"

हमें जहाँ तक पता चल सका है उसके अनुसार १९०० ई० के अप्रैल में लाटू महाराज खोड़ो केदार के घर पर थे। भक्त निवारण चन्द्र दत्त के मुख से हमने सुना है कि उनके किसी मित्र ने दुलदोल के उपलक्ष्य में ठाकुर के सेवकों को निमन्त्रित किया था। लाटू महाराज को यह संवाद देने के लिए उस समय वे खोड़ो केदार के घर गये थे।

नवम्बर में जगद्धात्री-पूजा के अवसर पर एक बार लाटू महाराज हुगली जिले के बगाण्डा ग्राम में गये थे। वहाँ पर वे तीन चार दिन रहे। "वहाँ गाँव के छोटे छोटे बच्चों को लेकर लाटू महाराज सारे दिन व्यस्त रहते थे। वे कभी उन सबको डराते, कभी उनके पीछे दौड़ते, कभी उनके साथ आँखमिचौनी खेलते और उन्हीं के बीच घुलमिल-कर उन्हीं के समान बातें करते। उन्हें अपने बीच आकर गाँव के बच्चे बड़े आनन्दित थे और दिन भर वे लोग उन्हीं के साथ घूमते फिरते। दो तीन

इन के भीतर ही बच्चे उनके साथ इतने हिल गये कि वे उनके कन्धे और पीठ पर चढ़ने तथा गोद में उठने में भी भय नहीं करते थे।" हमने यह घटना स्वामी विष्णुपद महाराज के मुख से सुनी है। किस समय यह घटित हुई, इसका उन्होंने उल्लेख नहीं किया; स्वामी खगेन महाराज के अनुमान के अनुसार हमने उसके काल का उल्लेख किया है।

विवेक चूड़ामणि

स्वामी वेदान्तानन्द
अनुवादक डॉ० आशीष बनर्जी

अध्यासदोषात्पुरुषस्य संसृति-
रध्यासबन्धस्त्वमुनैव कल्पितः
रजस्तमोदोषवतोऽविवेकिनो
जन्मादिदुःखस्य निदानमेतत् ॥ १७९ ॥

अध्यास रूप दोष से ही जीव को जन्म मरणादि रूप दुःख प्राप्त होता है। और जीव का अध्यास रूप बन्धन मन द्वारा ही कल्पित है। यह मन ही रजो और तमोगुण के वशीभूत है एवं विचार विहीन मानव के जन्मादि रूप दुःख प्राप्ति का कारण है। १७९

अध्यास मन की ही सृष्टि है; अतः मन ही जीव के संसृति का निदान है।

जो जैसा नहीं है, उसे वैसा समझना ही अध्यास है। मन ही अविद्या है -

अतः प्राहुर्मनोऽविद्यां पण्डितास्तत्वदर्शिनः।
येनैव भ्राम्यते विश्वं वायुनेवाभ्रमण्डलम् ॥१८०॥

उक्त कारण से आत्मज विचार परायण व्यक्ति गण मन को ही अविद्या कहते हैं। वायु के द्वारा मेघ समूह जिस प्रकार इधर-उधर बिखर जाता है, इस अविद्या के द्वारा जगत भी इसी प्रकार परिचलित होता है। १८०

तत्वदर्शी : आत्मदर्शी; पण्डित:-आत्म-अनात्म विचार निपुण।

तन्मनः शोधनं कार्यं प्रयत्नेन मुमुक्षुणा।
विशुद्धे सति चैतस्मिन्मुक्तिः करफलायते ॥१८१॥

उक्त कारण से, मलिन मन के शोधन हेतु यत्नशील होना मुक्ति काम साधक के लिए अति आवश्यक है। मन विशुद्ध होने पर – मन से राग-द्वेषादि दोष दूरीभूत होने पर—करतल में स्थित किसी भी फल की तरह मुक्ति अत्यंत सहजता से से प्राप्त की जा सकती है।

मुक्ति लाभ एक मात्र मानव देह में ही सम्भव है। और मुक्ति लाभ ही मानव जीवन की सार्थकता है। १८१

सत्वगुण के उद्रेक से मन शुद्ध और निर्मल होता है; परन्तु रजोगुण के नाश न होने तक सत्वगुण का अविर्भाव नहीं होता। अब इस रजोगुण को दूर करने का उपाय क्या है ?

मोक्षैक सक्तया विषयेषु राग
निर्मूल्य सन्यस्य च सर्वकर्म।
सच्छ्रद्धया यः श्रवणादिनिष्ठो
रजःस्वभाव स धुनोति बुद्धेः ॥१८२॥

जो अधिकारी साधक मोक्ष लाभ को जीवन का एकमात्र उद्देश्य मानते हैं, एवं विषयासक्ति को पूर्ण रूप से त्याग कर सभी सकाम कर्मों का त्याग करते हैं एवं सत् स्वरूप ब्रह्म में विश्वास परायण होकर गुरु एवं शास्त्र द्वारा वेदान्त वाक्य श्रवण कर उसके विचार एवं ध्यान में निरत होते हैं, वे बुद्धि के रजः स्वभाव अर्थात बहिर्मुखी वृत्ति के विनाश साधन में समर्थ होते हैं। १८२

फलस्वरूप उनका मन निर्मल होता है एवं उस निर्मल मन मे आत्म स्वरूप प्रतिभासित होता है।

कर्मसन्यास—सकाम कर्मत्याग। 'काम्यानां कर्मणां न्यासं सन्यास कवयो विदुः।' —'विद्वान व्यक्ति काम्यकर्म के परित्याग को संन्यास कहते हैं।' गी०, १८/२

विषयासक्ति का पूर्णरूप से त्याग करने पर ही सकाम कर्म त्याग सम्भव है।

मनोमय कोश के स्वरूप वर्णन के पश्चात्, यह सिद्ध किया जा रहा है कि वह आत्मा नहीं है।

मनोमयो नापि भवेत्परात्मा
ह्याद्यन्तवत्वात्परिणामि भावात्
दुःखात्मत्वाद्विषयत्वहेतो —
र्द्रष्टा हि दृश्यात्मकतया न दृष्टः ॥१८३॥

मनोमय कोष जिस कारण उत्पत्ति, विनाशशील, परिणामी, दुःखमय एव ज्ञान का विषय हैं, इस कारण वह कभी भी परमात्मा नहीं हो सकता। दृष्टा कभी भी दृश्यवस्तु रूप म किसी के ज्ञान का विषय नहीं हो सकता।

'अन्नमशितं त्रेधा विधीयते; तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्त पूरीषं भवति, या मध्यमस्तन्मासं, योह निष्ठस्तन्मनः। (छा: उ० ६/५/१)—भुक्त अन्न त्रिविध आकार में परिणीत होता है। उसका स्थूलतम अंश मल में, मध्यमांस मांस मे एवं सूक्ष्मतम अंश मन में परिणत होता है।' 'अस्य पुरुषस्य प्रयतो वांगमनसि सम्पद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यं देवतायाम्।' छा० उ० ६/८/५ — यह पुरुष जन मूमूर्ष होता है तव उसकी वाणी मन में, मन प्राण में, प्राण तेज में एवं तेज परम देवता में उपसंहृत होता है।' उक्त दोनो श्रुति वाक्य द्वारा यह प्रमाणित होता है कि मनोमय कोश उत्पत्ति एवं विनाशशील है।

मन परिणाम शील है। कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा धृतिरधृति-र्ह्री-र्धी र्भीरित्येतत् सर्वं मन एव।' वृ उ० १/५/३ 'काम, संकल्प, संशयज्ञान, आस्तिक्य बुद्धि, अश्रद्धा, दृढता, अधृति, लज्जा, प्रज्ञा, भय यह सभी मन के विविध रूप है।'

मन जो दुःखात्मक है यह सभी के अनुभव का विषय है।

मन आत्मा के ज्ञान का विषय है। मैं अपने को कभी भी विषय रूप मे नहीं जान सकता।

मनोमय कोश आत्मा नहीं हैं यह प्रमाणित हुआ। अब विज्ञानमय कोश का वर्णन किया जा रहा है: -

बुद्धिर्बुद्धीन्द्रियैः सार्धं सवृत्तिः वर्तुलक्षणः।
विज्ञानमयकोशः स्यात्पुंसः संसारकारणम् ॥१८४॥

बुद्धि जब पंचज्ञानेन्द्रिय सहित युक्त, अंहकारदि वृत्ति एवं 'मै कर्ता' इस अनुभव के सहित वर्तमान रहता है, तब वह विज्ञानमय कोश के नाम से जाना जाता है। यह विज्ञान मय कोश ही जीव के ससार वंधन का कारण है। १८४

अनुव्रजच्चित्प्रतिबिम्ब शक्ति
विज्ञानसंज्ञः प्रकृतेर्विकारः।
ज्ञान क्रिया वान हमित्यजस्रं
देहेन्द्रियादिदृढमिमन्यते भृशम् ॥ १८५ ॥

चित-शक्ति के प्रतिविम्ब सहि वर्तमातन, प्रकृति का विकार, ज्ञान एवं क्रिया-शक्ति सम्पन्न विज्ञानमय कोश [स्वभावतः जड़ होने पर भी चैतन्य का प्रतिबिम्बित होने के कारण] सर्वदा संपूर्ण रूप से देह एवं इन्द्रिय समूह ही 'मैं हूँ' ऐसा ज्ञान करता रहता है।

विज्ञान मय कोश स्वरूपतः जड़ एवं चेतना रहित होने पर भी चेतन आत्मा के द्वारा प्रतिबिम्बित होने के कारण चैतन्य प्रतीत होता है। यह सृष्टि का उपादान माया का विकार है। यह ज्ञानेन्द्रिय की सहायता से ज्ञानवान एवं कर्मेन्द्रिय की सहायता से क्रियावान प्रतीत होता है।

वैद्यनाथ च्यवनप्राश

अब पोलीजार में उपलब्ध

स्फूर्ति

ग्रोथ

विकास

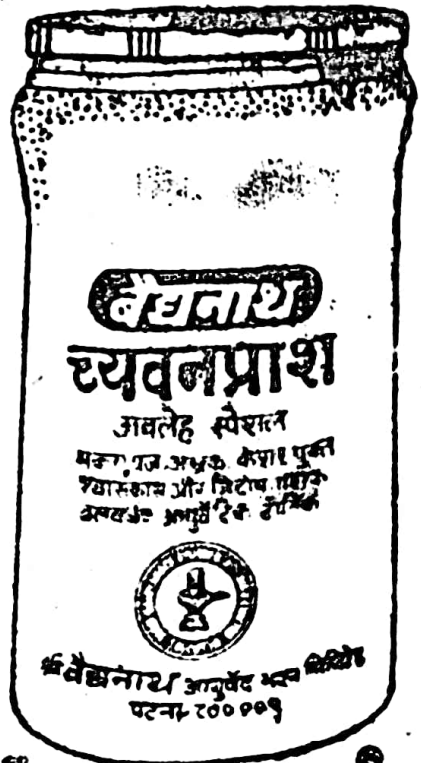

कफ, खांसी, सांस

दिमागी ताकत

बलवर्द्धक

आदर्श आयुर्वेदिक पारिवारिक टानिक

कहीं आपके डिब्बे में "मोपेड" तो नहीं ?

प्रत्येक एक किलो स्पेशल और साधारण एवं ५०० ग्राम के स्पेशल च्यवनप्राश के डिब्बे में इनामी कूपन प्राप्त कर "मोपेड" एवं ३०१ अन्य पुरस्कार प्राप्त करने का सुनहरा अवसर ।

वैद्यनाथ ७०० से अधिक दवाएं पांच आधुनिक कारखानों में तैयार करता है

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

वैद्यनाथ भवन रोड, पटना-९

डाक पंजीयित संख्या — सी. एच. पी. — १४—८३

स्वामी विवेकानन्दकृत सम्पूर्ण साहित्य

पुस्तक	मूल्य
योग	
ज्ञानयोग	१४.००
राजयोग (पातंजल योगसूत्र, मूलार्थ और व्याख्यासहित)	९.००
प्रेमयोग	५.००
कर्मयोग	६.००
भक्तियोग	४.००
ज्ञानयोग पर प्रवचन	२.००
सरल राजयोग	२.००
धर्म तथा अध्यात्म	
धर्मविज्ञान	५.००
धर्मतत्त्व	४.५०
धर्मरहस्य	३.००
हिन्दूधर्म	६.००
हिन्दूधर्म के पक्ष में	२.००
शिकागो वक्तृता	१.५०
नारदभक्तिसूत्र एवं भक्तिविषयक प्रवचन और आख्यान	३.००
भगवान श्रीकृष्ण और भगवद्गीता	४.५०
भगवान बुद्ध तथा उनका सन्देश	२.००
देववाणी (उच्च आध्यात्मिक उपदेश)	८.००
कवितावली (आध्यात्मिक अनुभूतिमय काव्य)	४.००
वेदान्त	४.२५
व्यावहारिक जीवन में वेदान्त	३.५०
आत्मतत्त्व	३.५०
आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग	५.००
मरणोत्तर जीवन	१.५०
जीवनी	
महापुरुषों की जीवनगाथाएँ	६.००
मेरे गुरुदेव	२.५०
ईशदूत ईसा	१.००
पवहारी बाबा	२.००

पुस्तक	मूल्य
सम्भाषणात्मक	
विवेकानन्दजी के संग में	१३.००
स्वामी विवेकानन्दजी से वार्तालाप	५.००
विवेकानन्दजी के संस्मरण	५.००
विवेकानन्दजी के सान्निध्य में	३.००
विविध	
विवेकानन्द साहित्य संचयन (महत्त्वपूर्ण व्याख्यान, लेख, पत्र काव्य आदि का प्रतिनिधिक संचयन)	२५.००
,, (सस्ता संस्करण)	१०.००
पत्रावली — (धर्म, दर्शन, शिक्षा, समाज राष्ट्रोन्नति इत्यादि सम्बन्धी स्फूर्तिदायी पत्र)	२१.००
भारतीय व्याख्यान	२०.००
भारत का ऐतिहासिक क्रमविकास एवं अन्य प्रबन्ध	४.००
हमारा भारत	१.५०
वर्तमान भारत	२.००
नया भारत गढ़ो	२.५०
भारतीय नारी	४.००
जाति, संस्कृति और समाजवाद	४.००
शिक्षा	५.५०
सार्वलौकिक नीति तथा सदाचार	३.५०
मन की शक्तियाँ तथा जीवन-गठन की साधनाएँ	१.५०
विविध प्रसंग	५.००
चिन्तनीय बातें	४.००
परिव्राजक (मेरी भ्रमणकहानी)	४.५०
प्राच्य और पाश्चात्य	४.५०
युवकों के प्रति	६.००
विवेकानन्द — राष्ट्र को आह्वान (पॉकेट साईज)	१.२
शक्तिदायी विचार (,,)	१.०
सूक्तियाँ एवं सुभाषित (,,)	१.०
मेरी समर-नीति (,,)	१.०
मेरा जीवन तथा ध्येय (,,)	१.०

प्रकाशक : रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर—४४० ०१२

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं
श्रीकांत लाभ द्वारा जनता प्रेस, नया टोला, पटना — ४ में मुद्रित।